वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक ६ जून २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक ६

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

ज्येष्ठ, सम्वत् २०८३

जून, २०२६

अनुक्रमणिका

* भगत्वकृपा और पुरुषार्थ : रामकृष्ण परमहंस देव २४६
* विवेकानन्द साहित्य में वर्णित भक्तियोग (डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि') २४९
* योगी सन्त गाडगे बाबा (मीनल जोशी) २५१
* श्रीरामकृष्णवचनामृतकार मास्टर महाशय और उनकी महान रचना : एक विश्लेषण (रीता घोष) २५७
* (बच्चों का आंगन) क्या अद्भुत दिन था ! (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) २६१
* प्रायश्चित एक शाश्वत तपश्चर्या (सीताराम गुप्ता) २६३
* (युवा प्रांगण) मन जीतो, जग जीतोगे (स्वामी गुणदानन्द) २६६
* पुराणों में सृष्टि एवं सृष्टि-प्रक्रिया (डॉ. जया पाण्डेय) २६८
* महर्षि वाल्मीकि तथा उनकी रामायण पर वेदों का प्रभाव (डॉ. के. डी. शर्मा) २७४
* ऑपरेशन सिन्दूर का कम उम्र का योद्धा (श्रीमती मिताली सिंह) २७७
* (भजन एवं कविता) अखण्ड जोत (सदाराम सिन्हा, 'स्नेही') २७२
* श्रीहनुमत् पंचक (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * दुरित-निवारिणि काली अम्बा (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), बस यही मेरी है विनती (आनन्द तिवारी 'पौराणिक') २७३
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) २७८

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २४५
सम्पादकीय २४७
रामगीता २५४
पुरखों की थाती २६२
श्रीरामकृष्ण-गीता २७६
गीतातत्त्व-चिन्तन २७९
साधुओं के पावन प्रसंग २८२
समाचार और सूचनाएँ २८६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित मन्दिर रामकृष्ण आश्रम, मनसाद्वीप की है।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री सुनील कुमार गुप्ता, विकासपुरी, नई दिल्ली	५,००१/-
डॉ. परमेश्वरी वार्ष्णेय, जोधपुर, राजस्थान	२,१००/-
श्री रामराज प्रसाद और श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद, उ.प्र.	१३,००१/-
श्रीमती प्रतिभा वार्ष्णेय, जोधपुर, राजस्थान	२,१००/-

जून माह के जयन्ती और त्यौहार

२९ स्नान-यात्रा
११,२५ एकादशी

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

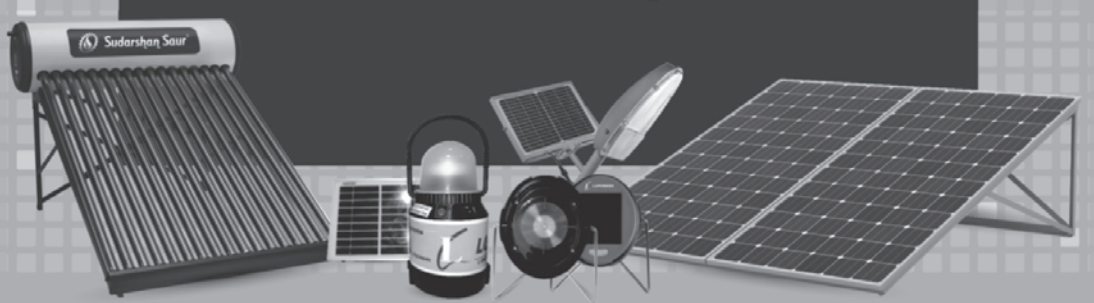

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ **जून २०२६** **अंक ६**

श्रीरामकृष्ण-भक्तिपंचकम्

सर्वावतारवर्याय शारदावल्लभाय च।
श्रीरामकृष्णदेवाय तस्मै भगवते नमः।।१।।
सर्वार्थसाधिके देवि श्रीरामकृष्णवल्लभे।
श्रीशारदे जगन्मातर्नारायणि नमोऽस्तु ते।।२।।
ठाकुरस्यैवान्यमूर्तेः सकाशात्श्रीनरेन्द्रतः।
ठाकुरस्योत्तमाभक्तिं शिक्षेरन् सर्वमानवाः।।३।।
भजनं रामकृष्णस्य जानन्ति तस्य पार्षदाः।
नित्यसिद्धगणा एव नान्यभक्ता मनागपि।।४।।
यतस्तदतिदुर्बोध्यमतिगुह्यं भवापहम्।
विशुद्धं दुर्लभं दीप्तं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।।५।।

– पृथ्वी पर जो भी अवतार हुये उनमें सर्वश्रेष्ठावतार, साक्षात् भगवती सारदा देवी के पति षडैश्वर्य विभूषित भगवान श्रीरामकृष्ण को नमस्कार करता हूँ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का फल देनेवाली श्रीरामकृष्ण-वल्लभा, उनकी लीलासहचरी शक्तिरूपिणी नारायणी जगन्माता श्रीमाँ सारदा देवी को प्रणाम करता हूँ।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के ही दूसरे प्रकाशस्वरूप स्वामी विवेकानन्द, जिनके उपदेशों का अनुसरण कर समस्त जगत श्रीरामकृष्ण की विशुद्धा, सर्वोत्तम भक्ति को प्राप्त कर रहा है, उन्हें नमस्कार है।

श्रीरामकृष्ण का साधन-भजन उनके नित्य सिद्ध पार्षद लोग ही जानते हैं। उनके भावों का अनुकरण नहीं करने से भक्त के मानस-पटल पर श्रीरामकृष्ण की ठीक-ठीक धारणा होना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह भजनीय तत्त्व बहुत ही गोपनीय है, अति दुर्बोध्य है, समझने में कठिन है। जन्म-मरण आदि संसार के तापों का नाश करनेवाला है, विशुद्ध निर्मल और ब्रह्मज्योति स्वरूप है। उस तत्त्व को जान लेने पर ही मनुष्य अमृतत्व-प्राप्ति का अधिकारी होता है।

भगत्वकृपा और पुरुषार्थ : रामकृष्ण परमहंस देव

भगवत्कृपा का पवन सदा बह रहा है। आलसी लोग उसका सदुपयोग नहीं करते। परन्तु जो उद्यमशील होते हैं, वे अपनी नौका का पाल फहरा देकर आसानी से पार हो जाते है।

प्रश्न – क्या एकाएक कुछ नहीं होता?

उत्तर – साधारणतया किसी भी विषय में सिद्ध होना हो तो उसके लिये पहले काफी साधना करनी पड़ती है। कोई एक ही दिन में द्वारिक मित्र की तरह हाईकोर्ट का जज नहीं बन जाता। बहुत बड़ी मेहनत करने के बाद ही द्वारिक मित्र की तरह जज बना जा सकता है, नहीं तो बिना वेतन के वकील ही बने रहना पड़ता है। वैसे यदा-कदा ईश्वर की कृपा से एकाएक भी सिद्धि मिल जाती है, जैसे मूर्ख शिरोमणि होकर भी कालिदास देवी सरस्वती की कृपा से एकदम महाकवि बन गया।

एक गृहस्थ भक्त – महाराज, हमने सुना है कि आप ईश्वर दर्शन करते रहते हैं। तो हमें भी करा दीजिए। उनके दर्शन कैसे हों?

श्रीरामकृष्ण – सब कुछ ईश्वर की इच्छा के अधीन है। परन्तु कर्म चाहिए, तब ईश्वर दर्शन होते हैं। केवल 'ईश्वर है' कहकर बैठे रहने से कुछ न होगा। तालाब में बहुत मछलियाँ हैं, परन्तु 'मछलियाँ हैं' कहकर केवल बैठे रहने से क्या कहीं मछली पकड़ी जा सकती है? बंसी-डोर ले आओ, पानी में चारा डालो, धीरे-धीरे गहरे पानी में से मछलियाँ निकलकर चारे के पास आएँगी, तब तो तुम उन्हें पकड़ सकोगे! यह भी खूब है, ईश्वर से मिला दो और आप चुपचाप बैठे रहेंगे! दही जमाकर, उसे मथकर मक्खन निकालकर उनके मुँह तक पहुँचाया जाये ! मछली पकड़कर हाथ में रख दी जाए! अच्छी बला है!

बीच समुद्र में जहाज के मस्तूल पर बैठा हुआ पक्षी उकताकर नई जगह जाने के लिये एक-एक करके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी ओर उड़ जाता है, पर पानी के सिवाय कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता। थककर, निरुपाय होकर वह फिर मस्तूल पर ही आ बैठता है। इसी प्रकार साधक भी अनुभवसिद्ध, हितैषी गुरु के द्वारा निर्देशित साधना-विधि का नित्य पालन करते-करते उकता जाता है तथा हताश हो, गुरु के प्रति विश्वास खोकर निजी प्रयत्न के द्वारा भगवत्प्राप्ति करने के लिए मनमाने साधनमार्गों में भटकने लगता है। पर उसका सब परिश्रम विफल ही होता है। अन्त में उसे हारकर उसी गुरु की शरण में लौट आना पड़ता है।

जब तक हवा न बहती हो, तभी तक लोग गरमी दूर करने के लिए पंखा झलते हैं, एक बार हवा बहने लगी कि पंखा नीचे रख देते हैं। साधना में भी जब तक ईश्वरीय सहायता न मिले, तब तक साधक को स्वयं मेहनत करनी पड़ती है, ईश्वर की कृपा हो जाने पर फिर मेहनत नहीं करनी पड़ती।

हवा बहने लगे, तो पंखे की जरूरत नहीं रह जाती। ईश्वर की कृपा हो जाए, तो साधन-भजन की आवश्यकता नहीं रहती। जीव पर भगवान्, गुरु तथा भक्तजनों की दया होने के बावजूद यदि स्वयं के मन की दया न हो, तो उसका विनाश ही होता है। अर्थात् इन तीनों की कृपा के होते हुए भी यदि मनुष्य के मन में मुक्ति की स्पृहा न हो, व्याकुलता न हो, तो सदुपदेश, साधुसंग आदि सब विफल ही होते हैं।

उनकी कृपा से ही उनके दर्शन होते हैं। वे ज्ञानसूर्य हैं। उनकी एक ही किरण से संसार में यह ज्ञान का प्रकाश फैला हुआ है। उसी की सहायता से हम एक-दूसरे को पहचानते हैं और संसार में तरह-तरह की विद्याएँ सीखते हैं। यदि वे एक बार अपना प्रकाश अपने चेहरे पर डालें, तो हमें उनके दर्शन हो सकते हैं।

सम्पादकीय

भगवान कहाँ-कहाँ रहते हैं

यह ध्रुव सत्य है कि सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं, फिर भी भक्त भक्तिवशात् अपने भगवान को किसी विशेष मूर्ति, स्थान आदि में देखता है। भक्त भगवान के विभिन्न रूपों की पूजा विभिन्न स्थानों में करता है। यहाँ तक कि भगवान ने नारदजी को स्वयं अपने निवास-स्थान का निर्देश किया है –

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदयेऽपि च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

– हे नारद ! न मैं बैकुण्ठ धाम में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में रहता हूँ। मेरे भक्त जहाँ मेरा गायन करते हैं, मैं वहाँ निवास करता हूँ। भगवान श्रीराम के निवास के सम्बन्ध में कहा गया है –

साकेतं निवासस्थानं रामस्य परमात्मनः।
ब्रह्मलोकं बैकुण्ठं च गोलोकं च सनातनम्।।
(अध्यात्म रामायण १.१.१०)

– साकेत, ब्रह्मलोक, बैकुण्ठ और गोलोक ये उच्च लोक भगवान श्रीराम के निवास-स्थान हैं।

भगवान श्रीराम पृथ्वी पर किन स्थानों में रहते हैं, उसका भी उल्लेख हमारे शास्त्रों में मिलता है –

अयोध्या निवासः श्रीमान् रामः परमेश्वरः।
चित्रकूटे निवासः सः पुष्पके च विमानके।।
(अध्यात्म रामायण १.१.११)

– परमेश्वर श्रीराम अयोध्या में निवास करते हैं। वे चित्रकूट और पुष्पक विमान में भी निवास करते हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त भी कुछ स्थानों में उनके निवास का वर्णन मिलता है, जिनकी चर्चा हम करेंगे।

जब भगवान वनवास के समय महर्षि वाल्मीकि जी के आश्रम में पधारे और उनसे निवेदन किया कि आप हमारे निवास योग्य स्थान का निर्देश करें –

अस जियँ जानि कहिय सोइ ठाऊँ।
सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ।।
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला।
बासु करौं कछु काल कृपाला।। २/१२५/५-६

– हे मुनिराज ! सोच समझकर ऐसा स्थान बताइये, जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और सुन्दर पत्तों और घास की पर्णशाला, कुटि बनाकर कुछ समय निवास करूँ।

भगवान श्रीराम की यह बात सुनने के पश्चात् मुनि वाल्मीकि ने उन्हें चित्रकूट में निवास के लिये कहा, जिसकी चर्चा मैं अप्रैल-२०२६ के अंक में कर चुका हूँ। इसके अतिरिक्त मुनि ने भगवान के रहने का जो स्थान बताया, वह बिल्कुल भिन्न है, विशेष महत्त्वपूर्ण है, मैं उसी का यहाँ प्रतिपादन करूँगा। उपरोक्त वर्णित ब्रह्मलोक, गोलोक, साकेत, चित्रकूट आदि स्थानों में जाना यदि मनुष्य के लिये दुःसाध्य है, तो फिर क्या करें? उन्हें कैसे प्राप्त करें? कहा जाता है कि मनुष्य का हृदय भगवान का सबसे बड़ा मन्दिर है। लेकिन यह हृदय-मन्दिर कैसा हो? जिस प्रकार गन्दे अपवित्र स्थान में मनुष्य नहीं रहता, उसी प्रकार गन्दे, अपवित्र, कुवासनाओं के मलयुक्त हृदय में भगवान नहीं रह सकते। भगवान कैसे मनुष्य के हृदय में रहेंगे, उसी की चर्चा ऋषि करते हैं। हृदय-मन्दिर सबके पास है, इसे भगवान के निवास के योग्य बनाया जा सकता है। भगवान के रहने के योग्य हृदय कैसा हो, भगवान कैसे हृदयवाले मनुष्यों में रहें, इसका निर्देश मुनि वाल्मीकि जी ने किया है, जिसका बहुत ही सुन्दर वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी ने किया है। आइये हम रामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में इसकी चर्चा करते हैं। ऋषि वाल्मीकि भगवान श्रीराम के निवास-स्थान का निर्देश करते हुये श्रीराम से कहते हैं –

सुनहु राम अब कहउँ निकेता।

जहाँ बसहु सिय लखन समेता।। २/१२७/३

– हे रामजी सुनिये ! अब मैं उन-उन स्थानों को बताता हूँ, जहाँ आप सीता और लक्ष्मणजी के साथ निवास कर सकते हैं।

वाल्मीकिजी कहते हैं –

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।। २/२२७/४-५

– जिनके कान समुद्र जैसे आपकी सुन्दर कथा रूपी अनेकों सुन्दर नदियों से निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूर्ण नहीं होते। अर्थात् जिनके कान सदैव आपकी सुन्दर लीला-कथा का श्रवण करते हैं और कभी तृप्त न होकर सदैव अधिक से अधिक सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं। उनका हृदय आपके निवास का सुन्दर स्थान है। आप वहाँ निवास कीजिये।

लोचन चातक जिन्ह कर राखे।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी।
रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।।
तिन्ह के हृदय सदन रघुनायक।
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।

२/२२७/६-८

– जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघ के लिये सदा लालायित रहते हैं, जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौन्दर्य रूपी मेघ की एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा-सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण; तीनों जगत के अर्थात् पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौन्दर्य का तिरस्कार करते हैं)। अर्थात् जो लोग आपके रूप-सौन्दर्य के दर्शन हेतु संसार के समस्त सुख-वैभव को तृण के समान त्यागकर केवल आपके दर्शन हेतु लालायित रहते हैं, हे रघुनाथ जी ! आप उन लोगों के हृदय रूपी सुखदायक भवनों में भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित निवास कीजिये।

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जिहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु।।

(२/२२८)

– आपके यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिनकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, अर्थात् जो सदा आपके यश और गुणावली को ही अपनी जिह्वा से कहता है, हे रामजी! आप उसके हृदय में निवास कीजिये।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा।
सादर जासु लहइ नित नासा।।
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी।
प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी।।
कर नित करहिं राम पद पूजा।
राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।

२/२२८/१-५

– जिसकी नासिका प्रभु अर्थात् आपके पवित्र और सुगन्धित सुन्दर प्रसाद को नित्य सादर सूँघती है, ग्रहण करती है, जो लोग आपको अर्पित करके ही भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूपी वस्त्र-आभूषण को धारण करते हैं, जो देव, गुरु और द्विज को देखकर विनम्रता और प्रेम से सिर झुकाते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं, जिनके हाथ नित्य श्रीराम के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में राम का ही भरोसा है, किसी अन्य का भरोसा नहीं है तथा जिनके चरण राम के तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी ! आप उनके मन में निवास कीजिये। **(अगले अंक में समाप्त)**

विवेकानन्द साहित्य में वर्णित भक्तियोग

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

प्रा. हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भारतीय वाङ्मय में वेद, वेदांग, पुराण, स्मृति, उपनिषद और षड्दर्शनों का विशेष महत्त्व है, जिसमें ज्ञान-विज्ञान का विशिष्ट स्वरूप व्याख्यायित है। इन सभी शास्त्रों में भक्ति की सत्ता को स्वीकार किया गया है। दर्शनिकों एवं शास्त्रियों ने ज्ञान को महान बताया है, लेकिन भक्ति के महत्त्व को नहीं घटाया जा सकता है। सभी शास्त्रों ने ज्ञान की अनन्त महिमा कही है, लेकिन श्रीमद्भागवत पुराण में भक्ति के दो पुत्र बताए गए हैं – ज्ञान और वैराग्य। इस आधार पर हम कह सकते है कि भक्ति सबसे बड़ी है। क्योंकि यह ज्ञान की माता है। कतिपय ज्ञानमार्गियों ने ज्ञान के सहारे भगवततत्त्व की प्राप्ति चाहकर साधना की, जबकि भक्ति के बिना ज्ञान का कोई अस्तित्व नहीं।

भक्ति में साकार रूप की साधना होती है, जबकि ज्ञान साधना में निराकार की अवधारणा मानी गई है। लेकिन ईश्वर अर्थात् ब्रह्मतत्त्व जल और बर्फ के समान है, जो जल है, वही बर्फ है और बर्फ ही तरल तत्त्व जल का स्वरूप है। वेदान्तियों ने ज्ञान का ही आलम्बन लिया है। आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द सबसे बड़े वेदान्ती हुए हैं, लेकिन उनमें भक्ति के आधार पर ज्ञान का वह वृक्ष उगा था। साकार रूप में जगदम्बा काली के प्रत्यक्ष दर्शन से और युगद्रष्टा रामकृष्ण परमहंस की कृपा से स्वामीजी वेदान्त के आधार पर जीव-जगत का अस्तित्व एक परम ब्रह्म में नहीं मानते हैं।

भारतीय ग्रंथों में भक्ति की अनन्त महिमा कही गई है। भारतीय आस्तिक दर्शनों – न्याय दर्शन – आचार्य गौतम (न्याय सूत्र), वैशेषिक दर्शन – आचार्य कणाद (वैशेषिक सूक्त), सांख्यदर्शन – आचार्य कपिलमुनि (सांख्य सूत्र), योगदर्शन – आचार्य पतंजलि (योगसूत्र), मीमांसा दर्शन – आचार्य जैमिनी (जैमिनी सूत्र), वेदान्त दर्शन – आचार्य बादरायण (ब्रह्मसूत्र) में धर्म या ईश्वर के अस्तित्व के साथ भक्ति की विद्यमानता है, यद्यपि भक्ति का विशेष महत्त्व योगदर्शन से है। यही कारण है कि भक्ति की साधना को भक्तियोग मान लिया गया है, क्योंकि यह भक्ति ही ईश्वर से जोड़ने में समर्थ है।

योग के अर्थ को 'युज् समाधौ' से मानने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाधि अवस्था में पहुँचकर आत्मा का परमात्मा से युक्त हो जाना, मिल जाना ही योग है। योगदर्शन के अनुसार योग के चार भेद हैं – मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग। लेकिन योग के इन्हीं स्वरूपों को श्रीमद्भगवद् गीता में अन्य अठारह नामों से वर्णित पाते हैं, जिनके निम्नांकित योग हैं – '१. अर्जुन विषादयोग २. सांख्ययोग ३. कर्मयोग ४. ज्ञान-संन्यास-योग ५. कर्मसंन्यासयोग ६. आत्मसंयमयोग (ध्यानयोग) ७. ज्ञान-विज्ञानयोग ८. अक्षर ब्रह्मयोग ९. राजविद्याराजगुह्ययोग १०. विभूतियोग ११. विश्वरूपदर्शनयोग १२. भक्तियोग १३. क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग १४. गुणत्रयविभागयोग १५ पुरुषोत्तमयोग १६. दैवासुरसंपद्विभागयोग १७. श्रद्धात्रयविभागयोग १८. मोक्षसंन्यासयोग। इसलिये स्वामी विवेकानन्द जी श्रीमद् भगवद्गीता को एक योगशास्त्र ही मानते थे। इसीलिए 'विवेकानन्द साहित्य' में पातंजल योग को बहुत महत्व दिया गया है, जो प्रथम खंड में प्रकाशित किया गया है। लेकिन इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द ने समय-समय पर राजयोग (खण्ड १ एवं ४), भक्तियोग खण्ड ३, ४ एवं ५) ज्ञानयोग (खण्ड ६) और (कर्मयोग

खण्ड ९) के अतिरिक्त प्रेमयोग पर भी व्याख्यान दिया है, जिसे उनके साहित्य में विशिष्ट स्थान मिला है।

स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्तवादी होते हुए भी भक्ति की मौलिक व्याख्या की है और 'पातंजल-योगसूत्र' की भाँति भक्ति और प्रेम को निरूपित करनेवाली रचना 'नारद भक्तिसूत्र' की व्याख्या की है, जिसे 'विवेकानन्द साहित्य' के तीसरे खण्ड में संकलित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द ने भक्ति की साहित्यिक, आध्यात्मिक केवल व्याख्या ही नहीं की है, बल्कि उसे अपने जीवन में आचरित भी किया है। उन्होंने स्वयं भक्तिमय जीवन जीया था। इसीलिये उनमें भक्ति के नाना स्वरूप स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनके जीवन का विराट रूप राष्ट्रभक्ति में परिणत दिखाई देता है। दरिद्रनारायण की भक्ति, मातृभूमि की भक्ति, राष्ट्रदेवता की भक्ति, समाज की भक्ति, गुरु की भक्ति, आदि भक्ति के विविध रूप स्वामी विवेकानन्द के जीवन में परिलक्षित होते हैं। स्वयं विवेकानन्द जी भक्ति के बारे में यही कहते थे – 'भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है, तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का आदेश है।'[१]

'विवेकानन्द साहित्य का तीसरा खण्ड उनके भक्ति सम्बन्धी चिन्तन का विशिष्ट संकलन ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने भक्ति को भक्तियोग के रूप में स्थापित किया है, साथ ही 'नारद भक्ति सूत्र' की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें उन्होंने भक्ति को ईश्वर और प्रेम के साथ जोड़ दिया है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने विदेश प्रवास के कालखण्ड में भक्ति के विषय में बताते हुए स्पष्ट घोषणा की है कि 'जैन और बौद्धों को छोड़कर संसार के सभी धर्मों ने सगुण परमेश्वर की कल्पना, सत्ता स्वीकार की है और उसी कल्पना से भक्ति और उपासना का उदय हुआ है।'[२] उन्होंने भक्तियोग – द्वितीय (वही, खंड-तीन, पृष्ठ २६२) में भक्ति सम्बन्धी अनेक सुभाषित (सूक्ति कथनों) वाक्यों को कहा है – 'भक्तियोग ब्रह्म से एकत्व प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित भक्ति का मार्ग है। यह धर्म अथवा अनुभूति प्राप्त करने का सरलतम और निश्चिततम उपाय है।' आगे 'नारदभक्ति सूत्र' में स्वामी विवेकानन्द जी ने भक्ति के बारे में दूसरे शब्दों में भी बताया है – 'भक्ति ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग है।'[३]

अगले खण्ड में स्वामी विवेकानन्द के भक्तितत्त्व का विशिष्ट चिन्तन प्राप्त होता है। उन्होंने एक वाक्य में भक्ति की इस प्रकार परिभाषा की है – 'सच्चे और निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं।'[४] स्वामी विवेकानन्द केवल माला जपने को ही भक्ति नहीं मानते थे, बल्कि उनकी मान्यता थी कि आभ्यंतरिक शुद्धि कहीं अधिक दुस्तर कार्य है। आभ्यंतरिक शुद्धि के लिए सत्यभाषण, निर्धन, विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्ति की सेवा आदि की आवश्यकता है।[५] वे मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं करते थे, बल्कि इसे भक्ति का एक माध्यम और उपासना-प्रणाली मानते थे। यह निरर्थक नहीं, अपितु व्यक्ति की शुद्धता की साधना है। वे शक्ति, पुत्र, धन, विद्या, वैभव और स्वर्ग-लाभ के लिए की जानेवाली भगवद्भक्ति को वास्तविक भक्ति नहीं मानते थे। विवेकानन्द भागवत की अहैतुकी भक्ति को भक्ति मानते थे। उनके अनुसार वे ही सच्चे भागवत हैं, जो कह सकते हैं – हे जगदीश्वर! मैं धन, जन-परम सुन्दरी स्त्री अथवा पाण्डित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर ! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी अहैतुकी भक्ति चाहता हूँ।'[६] वे बाह्यपूजा को निम्नातिनिम्न मानते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी यह कहने में संकोच नहीं करते हैं कि मैं किसी प्रकार की उपासना या पूजा पद्धति की निन्दा नहीं करता हूँ, बल्कि मेरे कहने का सारांश यह है कि इस प्रकार की नारायण-पूजा सर्वापेक्षा श्रेष्ठपूजा है और भारत के लिए इसी पूजा की सबसे अधिक आवश्यकता है। इसीलिए वे प्रेम को ही भक्ति की प्रमुख साधिका माननेवाली शक्ति कहते हैं। उन्होंने देश, काल, परिस्थिति के अनुसार योग, प्रेम और भक्ति की अभिनव व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं, जो सार्वकालिक एवं सदैव प्रासंगिक प्रतीत होती हैं।

'विवेकानन्द साहित्य' में भक्तियोग, भक्ति-दर्शन या भक्तिविषयक चिन्तन अनेकानेक सन्दर्भों एवं विषयों में व्याख्यायित है। स्वामी विवेकानन्द जी के भक्तियोग विषयक विशाल चिन्तन पर स्वतन्त्र रूप से विस्तृत कार्य करने की अपेक्षा है। 'विवेकानन्द साहित्य, तृतीय, खण्ड में भक्तियोग के रूप में भक्ति, भक्तियोग – १, २ भक्तियोग के पाठ, ईश्वर-प्रेम – १, २, प्रेमधर्म, दिव्यप्रेम, नारद-भक्तिसूत्र को स्थान दिया गया है। उनके चिन्तन का निष्कर्ष भी यही है कि भक्ति प्रेम के द्वारा ही योगरूप में अधिष्ठित हो सकती है। इसीलिए उन्होंने प्रेमस्वरूप भक्ति-दर्शन को प्रसारित करनेवाली कृति 'नारदभक्तिसूत्र' की अनुपम व्याख्या की है,

शेष भाग पृष्ठ २५३ पर

योगी सन्त गाडगे बाबा

मीनल जोशी, नागपुर

एक दिन गाडगेबाबा अपना काम समाप्त कर रात में मुम्बई के भायखला स्टेशन की ओर चल पड़े। उनके साथ उनके सहयोगी थे। अनेक गरीब मजदूर फुटपाथ पर सोये थे। गाडगे बाबा चलते-चलते एक बिजली के खम्भे के पास रुक गए और नीचे बैठ गए। उनके सहयोगी भी उनके साथ बैठ गये। गाडगे बाबा ने सहयोगी मास्टर से कहा, 'आप को साधु कैसा होता है, यह देखना है?'' मास्टर ने कहा, ''जी, बाबा ! कहाँ है !'' बाबा ने मजदूरों को दिखाकर कहा, ''सुबह उठने के बाद ये लोग क्या करना है, क्या खाना है, इसकी चिन्ता नहीं करते, तो ये सब साधु बन जाते। साधु का भरोसा होता है भगवान्! कल क्या होगा इसकी साधु चिन्ता नहीं करता।''

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने 'सर्वसङ्कल्पसंन्यासी' अनिकेत: स्थिरमति:, ऐसे संन्यासी और भक्त के लक्षण बताये हैं। गाडगे बाबा का जीवन ऐसा ही था। उनका सम्पूर्ण जीवन गीताशास्त्र का मर्म है।

डेबू (गाडगेबाबा का बचपन का नाम) का जन्म धोबी-समाज में हुआ। पिता की व्यसनाधीनता के कारण घर-बार सब नष्ट हो गया। वे पितृछत्र खोकर मामा के यहाँ आश्रित होकर रहने लगे। गीता कहती है – 'स्वधर्मं अपि चावेक्ष्य न विकम्पितुम् अर्हसि' अपने धर्म को देखकर भय नहीं करना चाहिए। डेबू अपने मामा के यहाँ दिन-रात परिश्रम करता था। 'आलस्य, निद्रा, प्रमाद' यह तामस गुण है। डेबू में बचपन से ही इसका अभाव था। वह घर का कार्य हो या खेती का; प्रत्येक काम निपुणता से करता था। गीता कहती है – 'योग: कर्मसु कौशलम्।' डेबू बड़ा हो गया। मामा को डेबू पर नाज था। किन्तु वे जल्दी गुजर गए। डेबूजी को दुख हुआ। पर अब डेबुजी अपने खेती के काम में इतने कुशल हो गये थे कि आसपास के सभी किसान उनका परामर्श मानते थे। डेबूजी के 'लोकसंग्रह' करने के स्वभाव के कारण सभी किसान एक दूसरे की सहायता करते थे। किन्तु साहूकार के पास सबकी जमीन गिरवी थी। साहूकार किसानों को बही-खाता कभी दिखाता नहीं था। डेबूजी ने अपनी खेती को साहूकार

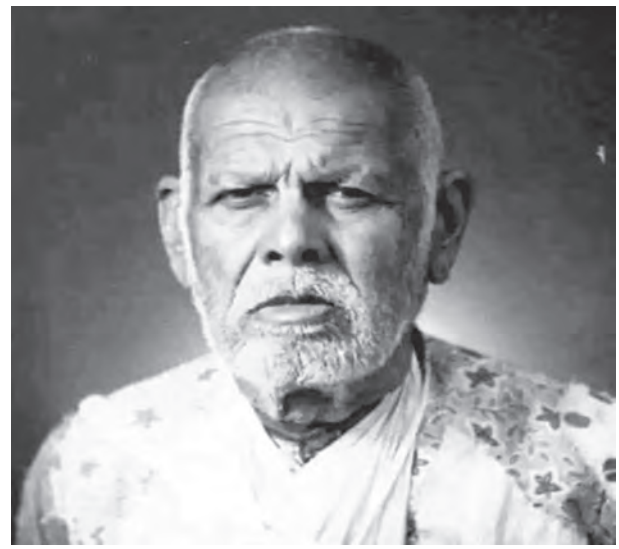

से छुड़ाने के लिये बहुत परिश्रम किया। घर में गिनके खाना होता था। साहूकार को पाई-पाई जमाकर के पैसे दिए। फिर भी साहूकार ने जमीन वापस नहीं दी। उलटा उन्हें मारने के लिए खेत में गुण्डे भेजे। तब निर्भय डेबू जी ने साहूकार से लड़कर खेती को कर्जे से मुक्त कर दिया।

डेबू जी के गाँव में कीर्तन होते थे। वह हमेशा कीर्तन सुनते थे। गाँव के बाहर के शिव मन्दिर में जाकर एकान्त में बैठते थे। अपने मन की बात भगवान से कहते थे। वे सोचते थे कि, 'छोटे से धरती के टुकड़े के लिए इतने कष्ट किये। पर यह धरती, ये आकाश किसने निर्माण किये? कैसे निर्माण हुए? ...मामा की मृत्यु हुई, तो वे कहाँ गए?...

गीताशास्त्र – वैदिक शास्त्र का स्मृति ग्रंथ है। शास्त्र कहते हैं कि व्यक्ति को प्रथम स्वधर्म का पालन करना चाहिए। अपने कर्म नि:स्वार्थ बुद्धि से, ईश्वर-अर्पण भाव से, फल अभिसंधिरहित करने से चित्त शुद्ध होता है। इस शुद्ध चित्त में जीव, जगत, ईश्वर को लेकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है। मुमुक्षा तीव्र होती है। तब वह मुमुक्षु गुरु का उपदेश पाकर आत्मानुभूति-सम्पन्न होता है। डेबूजी के जीवन में हमें यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

एक दिन दोपहर में डेबूजी शिव मन्दिर में अकेले ही बैठे थे। एक अवधूत साधु-फकीर वहाँ आये। डेबूजी ने उन्हें भिक्षा ग्रहण करने के लिए कहा। उस पर बाबाजी ने डेबू जी को गाँव से हलुए का सामान लाने को कहा। डेबूजी के सामान ले आने पर हुलआ बनाकर डेबूजी को भी खिलाया। डेबूजी अवधूत बाबा के दिव्यतेज से अभिभूत हो उनके साथ रात भर वहीं रहे। उन दोनों के बीच क्या शिक्षा-दीक्षा हुई, अन्तर्मन की ज्योति कैसे प्रज्वलित हुई, यह हम जान नहीं सकते। क्योंकि परवर्ती काल में भी गाडगेबाबा को उस दिन के बारे में पूछने पर बाबा केवल हँसते थे। दूसरे दिन अपने गुरु के चले जाने पर डेबूजी दोपहर को घर लौटे। वे अपने आन्तरिक परिवर्तन को छिपाकर मौन रहकर कामकाज में मग्न हो गए।

एक दिन खेतीबाड़ी के काम से वे दूसरे गाँव गए थे। उस समय पूर्वोक्त बाबाजी डेबूजी को ढूँढने लगे और डेबूजी का पता न चलने पर चले गए। शाम को घर आने पर डेबूजी को यह बात पता चली। उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्होंने सोचा – मेरे गुरु मुझे खोज रहे थे, पुकार रहे थे और मैं संसार के कामकाज में व्यस्त था। उसी दिन उन्होंने अपनी माँ, पत्नी-बच्चे सबका त्याग किया। वे घर छोड़कर चले गए।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।

हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है। यत्न करनेवाले योगियों में भी कोई एक मुझको

तत्त्व से जानता है। बिना टिकट रेल से यात्रा करते हुए लोगों का अपमान सहना उनकी तपस्या थी। 'शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः' 'यदृच्छालाभसंतुष्टो' ऐसा उनका जीवन था। रेल में से उन्हें जहाँ उतार देते थे, वहाँ वे उतर जाते थे।

मिट्टी के खपरेल में भाकरी का आधा टुकड़ा और बेसन यही उनका जीवन भर भोजन रहा। वह भोजन भी वे जो काम बताया जाये, उसे करके, भिक्षा मांगकर खाते थे। उसी खपरेल में वे पानी पीते थे। इसलिए उनका नाम 'गाडगे बाबा' हुआ। कपड़े की चिन्दियों को जोड़कर अपने हाथ से बनाया हुआ कुर्ता पहनते थे। ८५ वर्ष की उम्र तक, जीवन की अन्तिम साँस तक, यही उनकी जीवन-निष्ठा रही।

एक दिन वे रेलवे स्टेशन पर खड़े रेल के एक खाली डिब्बे में बैठे थे। एक पेन्टर उस डिब्बे को बाहर से पेंट कर रहा था। बाबा का हुलिया देखकर उसे मजाक करने की सुझी। पेन्टर ने बाबा से पूछा, 'कौन से गाँव के रहने वाले हो?'' बाबा ने कहा, ''ये गाँव क्या होता है जी?'' यह सुनकर पेन्टर को विश्वास हो गया कि यह आदमी पागल है। उसने बाबा का मुँह पेंट से रंग डाला। बाबा निर्विकार ! काम समाप्त कर पेन्टर घर जाने लगा। बाबा भी अपनी मस्ती में निकल पड़े। स्टेशन के बाहर आये, तो ऐसी अवस्था में भी लोगों ने उन्हें पहचान लिया। सब उनके पैर छूने लगे। तब पेन्टर को समझ आया कि यह प्रसिद्ध संत गाडगे बाबा हैं। वह शर्म के मारे दो दिन घर में लेटा ही रहा। बाबा तीसरे दिन पेन्टर के घर गए और उससे कहा, ''क्या तुम मुझे सोने के लिये स्थान दोगे?'' उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बाबा जूतों के पास कम्बल बिछाकर सो गए।''

गाडगेबाबा ने बहुत भ्रमण किया। तुकाराम महाराज कहते हैं – संतों के मन में लोगों की निम्न अवस्था देखकर करुणा उत्पन्न होती है। गाडगे बाबा समाज की दुरवस्था देखकर व्यथित हुए। उन्होंने अपने गाँव से ही सेवा-कार्य प्रारम्भ किया। प्राणीमात्र की सेवा और कीर्तन द्वारा प्रबोधन, यही गाडगे बाबा का जीवनव्रत था। वे जहाँ जाते, वहाँ झाड़ू लेकर सफाई करते थे। उन्होंने अभावग्रस्त लोगों के लिए अनेक आवास और धर्मशालाओं का निर्माण करवाया। गायों की रक्षा तथा सेवा के लिए गोशाला बनवाए। कहीं भी भेदभाव नहीं था। भगवद्गीता कहती है –

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल में समदर्शी होते हैं। वे सामान्य लोगों की भाषा में कीर्तन करते थे। हाथ में 'डफ' रहता था। 'देवकी

नंदन गोपाला, गोपाल गोपाल देवकीनन्दन गोपाला, ...' कहकर कीर्तन प्रारम्भ करते थे। वे कीर्तन में स्वच्छता, व्यसनमुक्ति का महत्त्व बताते थे। गाडगे बाबा लोगों से प्रश्न पूछकर, संवाद करते हुए भगवान एक हैं, भगवान सब लोगों में, पशुओं में विराजमान हैं, उनकी सेवा करो आदि समझाते थे।

गाडगे बाबा कहते थे, ''नशा, आलस छोड़े बिना गरीबों का कल्याण नहीं होगा। नशा, आलस नहीं छोड़ा, तो तुम्हारा खाना खराब होगा। तुम उसी से मरोगे।'' बाबा का यह उपदेश हमारे देश के लिए आज भी उतना ही अनुकरणीय है।

बाबा को समय बर्बाद करना अच्छा नहीं लगता था। किसी का समय व्यर्थ न हो इसके लिए वे बहुत सावधान रहते थे। एक बार सब मिलकर झाड़ू लगा रहे थे। इतने में एक व्यक्ति से उसका मित्र मिलने आया। वह व्यक्ति झाड़ू वही रखकर मित्र के साथ गपशप करने लगा। बाबा ने मित्र के जाने के बाद अपने सहयोगी से कहा, ''हम जो बातें करते हैं, उनमें अधिकतर व्यर्थ होती हैं। अपना समय ऐसे व्यर्थ नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों से हाथ जोड़कर बिदा लेनी चाहिए और अपना काम करना चाहिए। अगर काम न हो, तो पढ़ना चाहिए। शान्त रहकर भगवान का नाम लेना चाहिए। इधर-उधर व्यर्थ बात करते हुए, आलस से जम्भाई देते हुए समय व्यर्थ न गवाएँ।'

गाडगे बाबा अपने काम में व्यस्त रहते थे। लोगों के पूछने पर ही सुझाव देते थे। बाबा के समस्या को सुलझाने का ढंग अन्त:प्रेरणा से प्रेरित बहुत सरल, मार्मिक और उनकी प्रखर बुद्धिमता का द्योतक था। संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन के समय उन्होंने लोगों से कहा, ''तुम सब लोग सुबह अपने-अपने घर से निकलो और सरकार को अपना पक्ष बताओ। ... किन्तु तुम लोग एकत्रित नहीं होंगे।'' डॉ. बाबा साहब आम्बेडकर ने बाबा से कहा, ''आप मेरे गुरु स्थानीय हैं। मैं हिन्दू धर्म में रहना नहीं चाहता। मुझे आपकी सलाह चाहिए।'' बाबा ने कहा, 'आपको क्या करना है, वह आप देखिए। दो रास्ते छोड़ दीजिए – ईसाई मत बनो। उससे हमारे देश को धोखा है। मुसलमान मत बनो। उससे सत्यानाश होगा। बस ! डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर ने कहा, 'आप का परामर्श मानूँगा।'

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता''। ऐसे ही भगवान के भक्तों की भी कथा होती है। हम जितना उनकी जीवनी का स्मरण, चिन्तन करते हैं, उतना हम धन्य हो जाते हैं। महापुरुषों के जीवन से शास्त्रों के सिद्धान्त अनुभवजन्य हैं, यह बार-बार प्रस्थापित होता है अथवा कह सकते हैं कि महापुरुषों का जीवन शास्त्र-सिद्धान्तों की खुली प्रयोगशाला है।

गाडगेबाबा ने जीवन भर अविश्रान्त परिश्रम किया। कितना ही बड़ा कार्य हो, वह नश्वर है। यह वे जानते थे। फिर भी उन्होंने सभी कार्यों की अच्छी व्यवस्था कर दी। गाडगेबाबा को अपना अन्त समय पता था। वे कहते थे, ''अस्पताल में नहीं मरूँगा।'' हुआ भी ऐसे ही। सच्चे साधु के समान नि:संग होकर वे रास्ते में ही शरीर छोड़कर अनन्त में विलीन हो गए।

गोपाला गोपाला देवकी नंदन गोपाला... ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीगाडगेमहाराज – गो.नी. दांडेकर, मॅजेस्टिक पब्लिकेशन हॉउस **२.** श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस,गोरखपुर

पृष्ठ २५० का शेष भाग

जिसका आधार – 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा' बताया गया है। इस तीसरे खण्ड के चतुर्थ खण्ड में भक्तियोग के अन्तर्गत ग्यारह बिन्दुओं एवं पराभक्ति के अन्तर्गत दस बिन्दुओं में स्वामी विवेकानन्द जी का भक्ति विषयक सूक्ष्म चिन्तन वर्णित है। अगले पंचम खण्ड में भी सियालकोट एवं लाहौर में भक्ति पर दिए गए उनके दो भाषणों का संकलन है। इन दोनों भाषणों से स्वामीजी के भक्ति सम्बन्धी चिन्तन का समाज-सापेक्ष एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में नवीनतम व्याख्या प्राप्त होती है। वस्तुत: स्वामी विवेकानन्द के द्वारा प्रतिपादित चिन्तन का आधार ईश्वर के प्रति श्रद्धा और मानव सेवा एवं प्रेम की भावना है। ○○○

सन्दर्भ-ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य, खंड ५, पृ.२४८ **२.** वही, खंड ३ पृ. २४३ **३.** वही, पृ. २८७ **४.** वही, खंड-४,पृ. ४ **५.** वही, खंड ५, पृ. २५२ **६.** वही, खंड ५, पृ. २५४

रामगीता (६/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

काशी की वह घटना, जिसमें नन्दन साव से पुरस्कार पाने की आशा लेकर कविजी गए। उन्हें आशा थी कि कविता सुनकर कुछ न कुछ तो देंगे ही। पर वे बड़े कृपण थे। कवि से उन्होंने कहा, अच्छा फिर कभी विचार करेंगे, अभी तो नहीं दे रहे हैं। कविजी समझ गये कि यह तो टालने का बहाना है। पर कवि तो कवि ही था। लोगों ने पूछा, आप नन्दन साव के पास गये थे, क्या दिया उन्होंने। तो उन्होंने कहा, दिया क्या, जाना ही मेरी भूल थी। क्यों? बोले उनके नाम पर मैंने ध्यान दिया होता, तो जाता ही नहीं। क्यों? बोले – आदौ नकार, नन्दन में पहला अक्षर ही नकार है और अन्तिम अक्षर भी नकार। हाँ बीच में दकार है, पर उसमें नकार ही चढ़ा हुआ है। उस 'द' को भी 'न' ने समाप्त कर दिया। उन्होंने कहा – **आदौ नकारः परतः नकार, कादानशक्ति खलनन्दनश्च।**

तो मन्थरा माने? रा और म के क्रम को उलटने की इच्छा। राम राजा हों, भरत सेवा करें, यह नहीं, भरत राजा हों। बीच में थकार, वह तो और भी भयानक है। द तक तो पहुँचने ही नहीं दिया। यह जो नकार है, यह तो उसी त वर्ग का अन्तिम अक्षर है। पर अब त के बाद जहाँ थ आ गया, तो फिर और कहाँ आने की सम्भावना है, वहाँ पर तो निषेध करने के लिये नकार ही आ सकता है। थकार पहले आ गया। तो यह व्यंग्यात्मक नाम उसी वृत्ति का परिचायक है। वह कैकेयी के अन्तःकरण की गहराई में चित्त को जानती है।

कैकेयी अपने पिता के घर से जो लेकर आई है, वह तो भीतर भरा है, यहाँ आकर बदली हुई लग रही है। उसने क्या किया कि उसके दबे हुये मैं और मेरेपन को ही, अहंता और ममता को ही फिर से उभाड़ दिया। यही कला थी उसकी। उसने महारानी कैकेयी के शब्दों में भी देख लिया। यहाँ तक कि इनकी जो यह ऊँची भावना है, उसमें भी मैं और मेरापन लगा हुआ है। कैकेयीजी ने मन्थरा से कहा, तुम नहीं जानती हो कि राम मुझे कितने प्रिय हैं। मैं तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि जब मैं पूजा करती हूँ, तब ब्रह्मा से एक ही प्रार्थना करती हूँ कि ब्रह्मा अगर मुझे अगला जन्म देना चाहें और जरूर दें, लेकिन एक कृपा करें –

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू।
होहुँ राम सिय पूत पुतोहू।। २/१४/७

अगले जन्म में राम मेरा पुत्र बने, सीता मेरी बहू बने। इतनी ऊँची भावना है। किन्तु इस भावना में भी हल्कापन छिपा हुआ है। कई लोगों की भावना शब्दों में सुनकर बड़ी ऊँची लगती है। पर भीतर? उनकी क्षुद्रता सामने आ जाती है। जब वे स्वयं यह कहती हैं, मन्थरा से कि राम तो मुझे कौशल्या से अधिक चाहते हैं, तो फिर यह क्यों चाहती हैं कि अगले जन्म में राम मेरा पुत्र बने? इसी जन्म में जब उनको श्रीराम माँ कहते हैं, अपनी माँ से अधिक सम्मान देते हैं। वही अहम्, सूक्ष्म अहंकार है। क्या? ठीक है, मैं राम को बहुत प्यार करती हूँ, राम मुझे बहुत सम्मान देते हैं, पर संसार में जब भी राम का कोई परिचय देगा, तो कौशल्या का बेटा कहेगा। मेरा बेटा, यह मेरा शब्द जो है, अगला जन्म हो, तो लोग कहें कि राम कैकेयी का बेटा है। यह जो ऊँची भावना थी, उसके मूल में वही मेरापन था और मन्थरा ने उसके उसी अहं को उभाड़ दिया। किसी ने पूछ दिया, आपके पुत्र भरत हैं, तो राम से प्रेम क्यों करती हैं? तो उन्होंने कहा, वही अहम् वाली बात।

कौशल्या सम सब महतारी।

रामहि सहज सुभायँ पिआरी।। २/१४/५

राम सभी माताओं को समान रूप से चाहते हैं। पर जो अहंकारी है, वही कैकेयी जी की चाह है। क्या? सब माताओं को राम भले ही सामन रूप से चाहते हैं, पर –

मो पर करहिं सनेहु बिसेषी।

राम अपनी माता से भी अधिक स्नेह मुझसे करते हैं। मन्थरा मन ही मन हँसी। पूछ दी, कैसे पता चला कि अधिक प्रेम करते हैं? बोलीं –

मैं करि प्रीति परीछा देखी। २/१४/६

मैंने परीक्षा लेकर देखा है। मन्थरा समझ गई। परीक्षा तो संदेह होने पर ही लिया जाता है। तो कभी न कभी मन में आया होगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अपनी माँ को अधिक चाहता हो। तब मन्थरा ने कैकेयी के अहम् पर चोट करने के लिये कहा, हाँ, राम अवश्य आपको अधिक चाहते थे, पर – **रहा प्रथम अब ते दिन बीते।** वे दिन बीत गये। अब तो राम अपनी माँ की ओर झुक गये हैं और तुम जानती नहीं हो कि भविष्य में क्या होनेवाला है। राम बैठेंगे सिंहासन पर। लक्ष्मण से बदला लेने के लिये उसने कह दिया कि राम जब राजा होंगे, तो जानती हो, क्या होगा? लक्ष्मण युवराज होगा और भरत के साथ क्या व्यवहार होगा? भरत कारागार में डाले जायेंगे।

भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब। २/१९/०

और तुम अगर जीवित रहना ही चाहती हो, तो

जौं सुत सहित करहु सेवकाई।

तौ घर रहहु न आन उपाई।। २/१८/८

कौशल्या की दासी बनकर रहो। कैकेयी के अहम् पर आघात लगा। मैं? मुझे दासी बनना पड़ेगा? मुझे नीचा देखना पड़ेगा? यही है मैं और मेरा का खेल। जो दिखाइ भले न देता हो, पर गहराई में छिपा रहता है। कई लोगों के जीवन में वह नित्य दिखाई देता है, व्यवहार में प्रगट दिखाई देता है और कई लोगों का भीतर दबा रहता है, दिखाई नहीं देता, पर जब अवसर आता है, तब प्रगट हो जाता है। कैकेयी के जीवन की समस्या तो क्या हम सबके जीवन की समस्या तो और भी जटिल है। कैकेयीजी की समस्या तो और भी अधिक गहराई में छिपी हुई थी। पर यहाँ तो नित्य वही खेल ही चल रहा है। तब मानो मैं और मेरेपन से ही सारा संघर्ष, सारी बुराई प्रारम्भ होती है।

ज्यों ही मन्थरा ने कहा, राम अपनी माँ को अधिक चाहते हैं, त्यों ही कैकेयी के भीतर छिपी हुई अहंता-ममता जाग उठी। अच्छा! राम अपनी माँ को अधिक चाहते हैं, तो मैं भी अपने बेटे को अधिक चाहूँगी। इस मैं और मेरेपन ने ही उनको दो वरदान माँगने के लिए प्रेरित किया। मेरे पुत्र को राज्य मिले और कौशल्या के पुत्र को वनवास मिले। यही मैं और मेरेपन का वह पक्ष है, जो घर-घर में दिखाई देता है, समाज में दिखाई देता है। हमारी सन्तान की उन्नति हो और दूसरों की उन्नति न हो, उन्नति नहीं होनी चाहिए। वे हमसे पीछे रहें, नीचे रहें। मानो यह मैं और मेरा का दुर्दमनीय खेल था। अन्त में कैकेयी जी मन्थरा से इतनी प्रभावित हो गईं कि उन्हें पश्चात्ताप होने लगा कि मैंने बिना समझे मन्थरा के लिये न जाने क्या-क्या शब्दों का प्रयोग कर डाला, बड़ा अनर्थ हो गया। भला इससे बढ़कर कौन है मेरा हितैषी और इतनी बुद्धिमती है कि यह तो गुरु बनाने योग्य है, दीक्षा लेने योग्य है। इसलिए उन्होंने कह दिया कि मन्थरा, आज मैं तुम्हें समझ पाई। इस अयोध्या में अगर कोई मेरा हितैषी है, तो तुम हो, दूसरा कोई नहीं। क्योंकि मन्थरा ने सब से ध्यान हटाने की कोशिश की। यह सब षड्यन्त्र किया गया, जिसमें दशरथ भी शामिल हैं, कौशल्या सम्मिलित हैं, राम सम्मिलित हैं। यह जो वन भेजा गया, कौशल्या ने दशरथजी के कान में कह दिया कि भरत को दूर भेज दीजिए ननिहाल। उसके पश्चात् यह योजना बनाई गई, तुमसे छिपाया गया। अब कैकेयीजी के मुँह से क्या शब्द निकला –

तोहि सम हित न मोर संसारा।

बहे जात कइ भइसि अधारा।। २/२२/२

मन्थरा, बस एक तुम ही हो, मैं तो बह जाती इस विपत्ति की नदी में, तुमने मुझे बचा लिया। जब किसी को भगवान अपना हितैषी न लगें और मन्थरा हितैषी लगने लगे, तो समझ लीजिए कि सर्वनाश आ गया। क्योंकि गीता में भगवान ने कहा है कि मेरे भक्त में अगर कमी भी हो, तो भी उसे भक्त ही मानना चाहिए। क्यों?

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यसितो हि सः।। ९/३०

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। ९/३१

भले ही उसमें कमी है, लेकिन वह सही दिशा में तो

चल रहा है। धीरे चल रहा है, रुक जा रहा है, लेकिन वह मेरी ओर तो आना चाहता है। अब यह मेरा काम है कि मैं उसे बचाऊँ, उसको मैं नष्ट नहीं होने दूँगा। यह भगवान श्रीकृष्ण ने आश्वासन दिया है कि आप कैसे भी क्यों न हो, अगर आप मेरी ओर बढ़ रहे हैं, तो मैं आपकी रक्षा करूँगा, आपको बचाऊँगा। भगवान राम भी अपने श्रीमुख से सुग्रीव से यह कहते हैं कि सुग्रीव, मेरा तो यह नियम है कि –

जौं नर होइ चराचर द्रोही।
आवै सभय सरन तकि मोही।।
तजि मद मोह कपट छल नाना।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना।। ५/५७/२-३

वहाँ भगवान आश्वासन देते हैं। दो व्यक्ति हैं ऐसे जिनके जीवन में सारी बुराइयाँ दिखाई दे रही हैं। नारदजी और कैकेयी।

नारदजी में –

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। २/६२

उनमें काम आ गया – **जप तक कछु न होइ तेहि काला।** उनमें क्रोध आ गया – **फरकत अधर कोप मन माहीं।** उनमें लोभ आ गया –

अति बिकल मुनि मोह मति नाठी।
मनि गिरि भई छूटि जनु गाठी।। १/१३०/८

तो जो नाश का क्रम है, वह सब आ गया। क्योंकि भगवान कहते हैं –

सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

तो यह सब आ गया। यहाँ तक कि बुद्धिनाश भी आ गया।

जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी।
समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी।। १/१३३/६

जब सब आ गया, तो गीता का वह अन्तिम वाक्य बाकी रह गया। क्या? बोले – '**बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।**' जब बुद्धि नष्ट हो जायगी, तो व्यक्ति का नाश हो जायगा। पर नारद जी का नाश तो नहीं हुआ। क्योंकि भगवान की एक दूसरी प्रतिज्ञा भी थी। क्या? **न मे भक्तः प्रणश्यति** – मेरे भक्त का नाश नहीं होता है। एक ओर नारदजी के जीवन में सारी बुराइयाँ आ गईं, पर भगवान कह चुके हैं कि 'न मे भक्तः प्रणश्यति।' – मेरे भक्त का नाश नहीं होगा। इसलिये नारदजी का विनाश कहाँ हुआ? वह तो सारा दृश्य ही बदल गया। सब कुछ आनन्दमय हो गया। क्यों? नारदजी सबकुछ भूल गये, पर हितैषी को पहचानने में उन्होंने भूल नहीं की। नारद जी ने कहा, मेरे मन में विवाह की इच्छा है और उसके लिए मैं सुन्दरता चाहता हूँ और आपसे माँगने आया हूँ। भगवान ने हँसकर पूछा कि बहुत से सुन्दर देवता हैं, कामदेव भी मेरे ही समान सुन्दर है। उसके पास क्यों नहीं चले गये? नारदजी बोले, मैं क्यों जाऊँ?

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ।। १/१३१/२

आपसे बढ़कर तो मेरा कोई हितैषी है नहीं। भगवान बड़े प्रसन्न हुए। सारे दोष आ गये, बुद्धि भ्रष्ट हो गई, पर यह स्मृति नष्ट नहीं हुई कि भगवान ही मेरे हितैषी हैं। बस इतना याद रह गया, बाकी सब कुछ भूल गया। भगवान ने कहा – अरे नारद, मैं हितैषी नहीं तेरा परम हितैषी हूँ –

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
१/१३२/०

मेरा काम ही यही है। जिसमें तुम्हारा परम हित होगा, वही मैं करूँगा। **(क्रमशः)**

श्रीमद्भागवत में सर्वनाश के कारणस्वरूप अधर्म की वंशपरम्परा इस तरह से वर्णित है – अधर्म की स्त्री है मिथ्या। उनका दम्भ नामक पुत्र व माया नाम की एक कन्या होती है। वे परस्पर विवाह करते हैं और उनसे लोभ नाम का पुत्र और शठता नाम की एक कन्या होती है। इनके सम्मिलन से क्रोध और ईर्ष्या होते है। कलि उनका पुत्र और दुरुक्ति है कन्या। कलि दुरुक्ति के गर्भ से भीति नाम की कन्या और मृत्यु नामक पुत्र को पैदा करता है। यातना और नरक उनकी ही सन्तान है।

धर्म को सभी लोग लावारिस माल समझते हैं। शास्त्राध्ययन न करके, साधन-भजन कुछ भी न करके, धार्मिक विषयों पर अपना मत या विधान देने के लिए सभी अग्रसर होते हैं, अपने को expert या सर्वज्ञ ही समझते हैं। साधारण-सी एक अपराविद्या आयत्त करने के लिए कितने वर्षों तक विद्वान शिक्षक के पास शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है और पराविद्या प्राप्ति के लिए, धर्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्त्व को जीवन में प्रतिफलित करने के लिए बहुप्रयाससाध्य शिक्षा-दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, ऐसा सोचना पागलपन मात्र है।

– स्वामी विरजानन्द जी महाराज

श्रीरामकृष्णवचनामृतकार मास्टर महाशय और उनकी महान रचना : एक विश्लेषण

रीता घोष, बेंगलुरु

भारतवर्ष के इतिहास में देखा गया है कि जब कभी भी भारत की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ पतनोन्मुख हुईं, तो परम कारुणिक श्रीभगवान ने स्वयं आविर्भूत होकर भारत को पुनरुज्जीवित कर उसकी रक्षा की। पतनावस्था में सनातन धर्म का समग्र भाव भ्रमाच्छादित तथा स्वरूपहीन होकर छोटे-छोटे सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था तथा विक्षिप्त रूप में होने के कारण क्रमश: विलुप्तता की ओर अग्रसर होने लगा था। यदि ऐसे समय में सनातन धर्म के वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा नहीं की जाती, तो भारत की संस्कृति और धर्म स्वाभाविक रूप से कुछ और रूप ले लेता। इसलिये ऐसी कठिनतम जटिल उलझी हुई परिस्थिति में जग-रक्षक युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण रूप में भारत भूमि में आविर्भूत हुए। स्मृत्यादि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि वेद अर्थात् प्रकृत धर्म एवं ब्राह्मणत्व अर्थात् धर्मशिक्षकों की रक्षा के लिये भगवान बारम्बार शरीर धारण कर अवतार लेते हैं। सनातन धर्म व शास्त्र में निहित होते हुए भी जो कुछ आवृत था, वह सभी पुनराविष्कृत होकर उच्च निनाद द्वारा मानव समाज में घोषित होने लगा। श्रीरामकृष्ण के जीवन में शास्त्रों की वाणियों ने जीवन्त मूर्त्त रूप ले लिया। कठिन साधना तथा भगवत्प्रेम की पराकाष्ठा दिवालोक में स्पष्ट देखने को मिली।

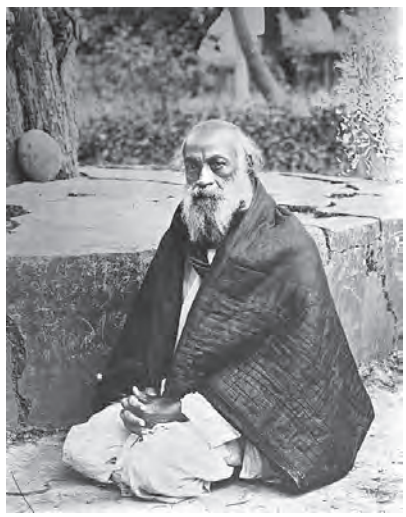

परम्परागत शिक्षाविमुख, सामान्य ग्राम्य जीवन व्यतीत करनेवाले उस सौम्य दिव्य पुरुष के मुख से नि:सृत अद्भुतवाणियों ने उस समय के विद्यालय, विद्वान तथा प्रथागत शिक्षाओं से शिक्षित अँग्रेजी भावापन्न समाज को विस्मित, विमूढ़ कर दिया। शास्त्रों के गूढ़ रहस्य, मर्म वाणी स्वत:स्फूर्त उनकी वाणियों में ध्वनित होता था। निरंहकारी बालकस्वभाव श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''मैं कुछ नहीं जानता मेरी माँ (अर्थात् भवतारिणी माँ काली) सब कुछ जानती हैं, मैं तो उनका यन्त्र-स्वरूप हूँ।''

मास्टर महाशय श्रीरामकृष्ण के अनन्य भक्त थे। वे श्रीरामकृष्ण के जीवन काल में ही उनके उपदेशों, अनुपम उदाहरणों द्वारा ईश्वरीय भक्ति की चर्चा, शास्त्रों की अति सरल व्याख्या इत्यादि को अपनी शार्ट हेंड राईटिंग की कुशलता से सांकेतिक शब्दों में अपनी दैनिक डायरी दिन-तिथि इत्यादि के साथ लिख लेते थे। इस प्रकार कालान्तर में लिखी गई श्री'म' की डायरी श्रीरामकृष्णवचनामृत (Gospel) की स्रोत बन गई। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न समयों में श्रीरामकृष्ण की उपस्थिति में उनके कथोपथन एवं उनका शिष्यों से वार्तालापों का विवरण २६ फरवरी, १८८२ से १० मई १८८७ तक संकलित किया था। श्रीम या महेन्द्रनाथ गुप्त अद्भुत दैवी शक्ति के अधिकारी थे। वे अपनी लिखी गई डायरी में शार्टहेंड में लिखे गए शब्दों पर ध्यान किया करते थे। तत्पश्चात् अपनी अतुलनीय मेधा-शक्ति व स्मृति-शक्ति द्वारा उन शब्दों को जैसा श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था, ठीक वैसा ही उसे लिखते थे। प्रत्यक्षदर्शी नित्यात्मानन्द (पेज ३२८) लिखते हैं, ''इस अपूर्व महापुरुष को सम्भवत: श्री ठाकुर दैवी मेधा एवं स्मृति-शक्ति-सम्पन्न बनाकर साथ लाए थे। मानो वह फोटोग्राफ की स्लाइड है, जो कुछ सुना, वही अपने मस्तिष्क में अंकित कर लिया। ऐसा लगता है कि इसे (Gospel अथवा वचनामृत) लिखते समय मानो श्रीठाकुर और श्री 'म' एकाकार हो गए थे। उस शुद्ध समाहित मन में जो कुछ उदय होता गया, पूर्व में लिखे नोट्स के आधार

पर वही लिखते गए।'' दूसरे किसी भी व्यक्ति के लिये श्री 'म' की लिखी हुई वह डायरी समझ से बाहर थी, क्योंकि वह केवल कुछ सांकेतिक शब्दों का संकलन था।

१६ जुलाई, १९२५ में स्वामी वीरेश्वरानन्द द्वारा श्री 'म' से यह पूछे जाने पर कि 'आपने इन सामान्य स्केच से इस प्रकार विस्मयकर एवं मनोमुग्धकारी Gospel या कथामृत की रचना कैसे की? इसके उत्तर में श्रीम ने कहा – 'उनकी कृपा से मेरी आँखों के सामने ये घटनायें जैसे अभी इसी क्षण घटी हैं, ऐसा प्रतीत होता है, समय का व्यावधान दूर हो जाता है ध्यान में, भक्ति में कभी अतीत-भविष्य नहीं होता।''

स्वामी शिवानन्द जी ने कहा है – ''श्रीठाकुर की बातें इतनी अच्छी लगती थीं कि मैंने कुछ-कुछ लिखकर रखना प्रारम्भ किया था। एक दिन दक्षिणेश्वर में एकाग्र मन से ठाकुर के श्रीमुख की ओर देखते हुये बहुत ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था। बहुत अच्छी सुन्दर बातें हो रही थी। अकस्मात् ठाकुर ने मेरे उस भाव को देखते हुए कहा – 'क्यों, ऐसे क्या सुन रहा है?' फिर उन्होंने कहा – 'तुझे वह सब करने की आवश्यकता नहीं है। तुमलोगों का जीवन अलग है।' मुझे लगा कि ठाकुर ने मेरे मनोभाव को समझ लिया है, इसलिए वैसा कह रहे हैं। तदनन्तर मैंने उस दिन से कुछ लिखने का संकल्प त्याग दिया और जो कुछ लिखा था, वह सब भी गंगा के जल में विसर्जित कर दिया। श्रीरामकृष्णदेव के सम्मुख कोई कुछ लिखने का प्रयास करने पर वह उन्हें मना कर देते थे, परन्तु मास्टर महाशय को ठाकुर ने कभी मना नहीं किया। काशीपुर में अस्वस्थ रहते समय भी ठाकुर को यह पता चल गया था कि श्री'म' उनकी बातों को लिखकर रखते हैं, परन्तु इसके लिए उन्होंने श्रीम को कभी मना नहीं किया।

मास्टर महाशय बताते हैं कि रामकृष्ण देव की अद्‌भुत बातों को एकाग्रता से सुनकर मन में धारण करना एवं तत्पश्चात् उसे डायरी में लिखना, इसमें दीर्घ समय लग जाता था। घंटों निद्राहीन होकर डायरी लिखने के कारण उनके माथे एवं स्नायु पर काफी बोझ पड़ता था। यहाँ तक कि इसके कारण एक बार रास्ते में वे अचेत हो गये थे। यह सब सुनकर ठाकुर ने उनसे कहा था, ''सोओ और दूध पीओ एवं कुछ दिन लिखना बन्द रखो। मास्टर महाशय कहते हैं – ''ईश्वर का कार्य किसे समझ में आता है। एक बार ठाकुर ने मुझसे कहा, तुम्हें माँ (काली माता) का कार्य करना है। ईश्वर भागवत के पण्डित को थोड़ा शिक्षित करके रखते हैं, नहीं तो भागवत कौन सुनाएगा? लोक शिक्षा के लिए माँ ने तुम्हें संसार में रखा है।'' महेन्द्रनाथ संसार त्यागना चाहते थे, सम्भवत: इसीलिये ठाकुर ने उनसे ऐसा कहा था।

महेन्द्रनाथ गुप्त, जिन्हें हम मास्टर महाशय भी कहते हैं, को श्रीरामकृष्ण देव के विशेष कार्य हेतु लाया गया था। यह सब कुछ पूर्वनिर्धारित ही था। उनके डायरी-लेखन के अभ्यास ने सुविख्यात ग्रन्थ The Gospel of Sri Ramakrishna (श्रीरामकृष्णवचनामृत) को जन्म दिया। प्रारम्भ में उन्होंने श्री ठाकुर द्वारा कथित उपदेशों को धारण करने के लिये अर्थात् स्वयं की स्मृति में रखने के लिए डायरी में इसे लिखना प्रारम्भ किया था। लिखित उपदेशों पर वे रात भर ध्यान करते थे। इसलिये बहुत पहले घटी घटनाएँ एवं लीलाएँ ठाकुर की कृपा से जैसे उनकी आँखों के सम्मुख, उनके मानस पटल पर पुन: जीवित होकर प्रकट हो जाती थीं।

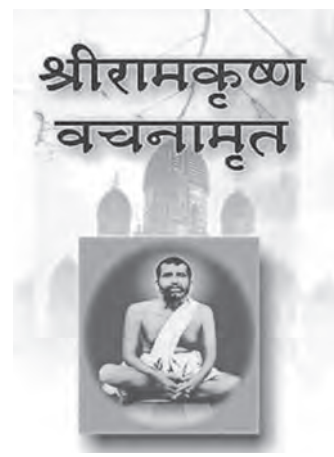

डायरी को पुस्तकाकार कथामृत का रूप देते समय सबसे बड़ी विशेषता यह देखने को मिलती है कि इस ग्रन्थ की रचना में महेन्द्रनाथ गुप्त ने स्वयं को पूर्णत: छिपाकर रखा है। कहीं भी अपने अस्तित्व या 'मैं' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। अपने गोपनीय रखने के लिये उन्होंने इस पुस्तक में विभिन्न छद्म नामों का प्रयोग किया है, जैसे मणि, श्रीम, मणिमोहन, मोहिनी, इंग्लिश मैन, मास्टर तथा एक भक्त आदि।

श्रीठाकुर की महासमाधि के पश्चात् ११ जुलाई, १८८८ को बेलूड़ मठ के नीलाम्बर बाबू के बगीचे वाले मकान में श्रीमाँ जब निवास कर रही थीं, तब एक दिन श्रीम ने अपनी इस पाण्डुलपि में से कुछ अंश श्रीमाँ को पढ़कर सुनाया था। उसे सुनने के पश्चात् माँ ने मास्टर महाशय को आगे लिखने के लिये प्रोत्साहित किया। १८९० में श्रीम ने श्रीमाँ को एक अध्याय पढ़कर सुनाया और उसे लोक हितार्थ छापने

तथा श्रीमाँ के आशीर्वाद के लिए प्रार्थना किया। श्रीमाँ की इच्छानुरूप श्रीम ने १९९७ में अंग्रेजी में गोस्पेल नामक पुस्तक का दो खण्डों में प्रकाशन किया।

तत्पश्चात् पुन: २४ नवम्बर, १८९७ को स्वामीजी ने द्वितीय खण्ड की प्राप्ति पर श्रीम को लिखा – ''असंख्य धन्यवाद। वास्तविक अपूर्व मौलिक प्रयास है। इसके पूर्व कभी भी किसी लेखक ने किसी महान आचार्य के जीवन को अपने रंग में न रंगकर इस प्रकार से जन-साधारण के समक्ष उपस्थित नहीं किया है, जैसा कि आपने किया है।'' पुन: स्वामीजी कहते हैं – ''यह विशाल कार्य आपके लिये ही निश्चित था, स्पष्ट रूप से वे (ठाकुर) आपके साथ हैं।''

मास्टर महाशय की डायरी से जब कथामृत छोटे-छोटे पुस्तकाकार में प्रकाशित होने लगा, तो श्रीमाँ ने ४ जुलाई, १८९७ में उन्हें इस प्रकार आशीर्वाद सहित पत्र लिखा –

''बेटा, तुमने उनसे (श्रीरामकृष्ण से) जो कुछ सुना था, वे बातें सत्य हैं। उन्होंने तुम्हारे सम्मुख उन बातों को कहा था और अभी आवश्यकतानुसार वे ही उन बातों को प्रकाशित करा रहे हैं। उन बातों को व्यक्त नहीं करने पर लोगों को चैतन्य-प्राप्ति नहीं होगी। यह ज्ञात हो, तुम्हारे पास उनकी जितनी भी बातें हैं, वे सभी सत्य हैं, तुम्हारे मुख से सुनने पर मुझे बोध हुआ कि उन्होंने ही ये सभी बातें कही हैं।''– जयरामवाटी

श्री'म' कहते हैं कि ठाकुर के प्रत्येक शब्द एवं बातें मंत्र हुआ करते थे। अर्थात् ठाकुर के उपदेशों पर यथार्थ रूप से चिन्तन-मनन या ध्यान करने से मनुष्य भगवान से युक्त हो जाते हैं।

छपने के तुरन्त बाद श्रीम कथामृत को श्रीमाँ को निवेदन किया करते थे। प्रतिदिन सन्ध्या समय माँ इस पुस्तक का पाठ सुनती थीं। श्रीमाँ के जीवन-काल में कथामृत के चार खण्ड प्रकाशित हो चुके थे। इस पुस्तक का पाठ समाप्त होने पर माँ कहती थीं – ''ये सभी उन्हीं की बातें हैं। भाव को मन में धारण कर, फिर उसे लिखना कोई सामान्य कार्य नहीं है। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि उनकी पुस्तक का अत्यन्त प्रचार हो तथा उन्हें सभी लोग जान सकें।''

कई बार भक्तों से भी श्रीमाँ ने कहा है – ''मैं कुछ नहीं जानती। सब कुछ ठाकुर के मुख से सुनी हूँ। ठाकुर का कथामृत पढ़ो, उसमें ही सब उपदेश हैं।'' श्रीमाँ सारदा ने स्वामी अरूपानन्द से कहा था, 'अब के लोग सब सयाने हैं, झट से फोटो खींच लिया। यह जो मास्टर महाशय है, क्या किसी प्रकार कम है? जितनी बातें हैं, सब लिख ली है। किस अवतार का फोटो है? किस अवतार की बातचीत को इस प्रकार लिखा गया है?

स्वामी अरूपानन्द – 'वचनामृत' के बारे में मास्टर महाशय ने कहा था कि दस-बारह खण्ड प्रकाशित होने पर तब कहीं सारी बात निकाली जा सकेगी। अब पता नहीं उतनी सब बातें कब निकल पाएँगी?

श्रीमाँ – हाँ, उमर हो गयी है। प्रकाशित होने के पहले ही कहीं न चले जायें।

कथामृत के साथ-साथ कथामृतकार की भी बहुत प्रसिद्धि एवं प्रशंसा होने लगी। मास्टर महाशय सदा स्थितप्रज्ञ निरभिमानी थे। वे जानते थे कि उनसे कथामृत को लिखवानेवाले श्रीरामकृष्णदेव ही हैं। इसलिये उन्होंने कभी भी इस पुस्तक का श्रेय स्वयं को नहीं दिया।

देश-विदेश में भी कथामृत (Gospel) की ख्याति फैल गई। कई विदेशी विशिष्ट व्यक्तियों ने गोस्पेल की अनुपम माधुर्य के साथ श्रीरामकृष्ण देव की वाणियों की श्रेष्ठता को अपने शब्दों में स्वीकारा है।

विदेशियों की दृष्टि में Gospel – फ्रांसीसी लेखक एवं श्रीरामकृष्ण देव के जीवनीकार रोमॉ रोलॉ ने श्री'म' के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए लिखा है – 'श्रीरामकृष्ण कथामृत अत्यन्त मूल्यवान ग्रन्थ है। क्योंकि इसमें वर्ष १८८२ से परवर्ती चार वर्षों तक श्री गुरुदेव के साथ स्वयं के कथोपकथन अथवा जो कुछ बातें उन्होंने स्वकर्ण द्वारा सुनी हैं, उन सबका प्रामाणिक, विश्वसनीय विवरण हैं। इसकी अमान्यता अथवा मान्यता स्टेनोग्राफर के लेखन जैसा है।'

इसी प्रकार अलडास हक्सले (ब्रिटिश लेखक एवं

चिन्तक) ने गोस्पेल को धार्मिक पुरुषों की जीवनी-साहित्य के क्षेत्र में इसे एक अनन्य सृजन कहा है। उनका मानना है कि विश्व के किसी भी आध्यात्मिक ध्यानी पुरुष के प्रतिदिन के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का इस प्रकार से ऐश्वर्यमंडित वर्णन कहीं भी नहीं किया गया है। किसी धर्माचार्य की साधारण उक्तियों को भी इतनी प्रामाणिकता से नहीं लिखा गया है।

क्रिस्टोफर ईशरवुड (विख्यात् अमेरिकी साहित्यकार एवं श्रीरामकृष्ण के जीवनीकार) लिखते हैं – ''श्रीरामकृष्ण के देवत्व के सम्बन्ध में श्रीम का सत्यता-बोध प्रश्नातीत था। इसलिये उन्होंने श्रीरामकृष्ण की महिमा का पृथक प्रचार करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने जो कुछ भी देखा, सुना, उसमें से कुछ भी व्यर्थ नहीं जाने दिया या उसे बदला भी नहीं।''

हिऊस्टन स्मिथ (सुविख्यात अमेरिकी लेखक) के मतानुसार विश्व के सुविख्यात धर्म-गुरुओं में १९वीं शताब्दी के श्रीरामकृष्ण सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे। १९५० में स्मिथ The worlds Religious नामक पुस्तक की रचना करते समय प्रतिदिन The Gospel of Sri Ramakrishna नामक ग्रंथ का १० पृष्ठ पढ़ते थे, साथ ही उस पर ध्यान करते थे। हिन्दू धर्म नामक अध्याय को सहर्ष स्वीकृति प्रदान करने में यह ध्यान उनका सहायक हुआ।

श्रीअरविन्द घोष के मतानुसार श्री'म' द्वारा लिखित इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का संशय नहीं है। क्योंकि महेन्द्र गुप्त जैसे कुशल भक्त ने अपनी दैनन्दिनी में इसे लिपिबद्ध किया है।

गिरिशचन्द्र घोष – मेरी अस्वस्थता के पिछले तीन वर्षों में कथामृत ही मेरे जीवन का सर्वस्व बन गया था। ...समग्र मानव जाति आपकी आभारी रहेगी। (श्रीम को लिखे पत्रांश)

स्वामी रामकृष्णानन्द जी – ''अवतार वरिष्ठ की सर्वोच्च प्रज्ञा से परिपूर्ण इन अमूल्य पृष्ठों को प्रकाशित कर आपने समग्र मानव को कृतज्ञ और ऋणी कर दिया है।

(श्रीम को लिखे पत्रांश) स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं – श्री'म' एक असाधारण पुरुष हैं। वे श्रीरामकृष्ण के वेदव्यास हैं। जब तक चन्द्र-सूर्य जगत् में उदित होगा, तब तक श्रीरामकृष्ण का नाम जीवन्त रहेगा तथा उनके साथ कथामृत के लेखक का नाम भी जीवन्त रहेगा।

आशापूर्णा देवी (सुप्रसिद्ध बांग्ला लेखिका व साहित्यकार) लिखती हैं – इस पुस्तक के प्रत्येक शब्द या भाषा में गम्भीर जीवन-बोध प्रकाशित होता है। उदार जीवन दर्शन, उपलब्धि का असीम विस्तार, छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से वैचित्र्यमय मानवचरित्र का निपुण विश्लेषण, इसके साथ ही सरल वाक्य-कौशल, अवश्य ही उच्च स्तरीय साहित्य का स्थान प्राप्त कर लेता है। सर्वोपरि विश्वास की सत्यता, जो चिरन्तन साहित्य का मूलधन है। स्वयं के हृदय में अनुभूत सत्य को दूसरे की विश्वास-भूमि पर स्थापित करने की दृढ़ता, जीव-सत्ता में शिवसत्ता की अभिव्यक्ति; यही महान साहित्य का लक्षण होता है। वह साहित्य स्रष्टा को अमरत्व प्रदान करता है, वह साहित्य संसार को प्रेम करना सिखलाता है। श्रीरामकृष्ण-कथामृत इसी प्रेम की शिक्षा प्रदान करता है।

गीता एवं बाईबल की तरह कथामृत का भी विश्व के अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया है तथा वर्तमान में भी अनुवाद हो रहा है। शास्त्र का उद्देश्य है अज्ञान-निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का अमृत मनुष्य को अमरत्व प्रदान करता है, संसार-सागर के कल्मष से निकालकर ब्रह्मानन्द-सागर में निमज्जित करता है। गीता-भागवत के समान ही श्रीरामकृष्णवचनामृत आज घर में नित्य पाठ्य ग्रन्थ बन चुका है। दुख, पीड़ा, वेदना, मानसिक अस्थिरता के क्षणों में यह ग्रन्थ सान्त्वना तथा शान्ति की वाणी सुनाता है। यह एक ऐसा सबल आश्रय है, जहाँ सभी आकर विश्राम कर सकते हैं।

फलश्रुति – श्रीरामकृष्णवचनामृत के पाठ की फलश्रुति यह है कि इसका पाठ करते समय एवं पाठ के पश्चात् बहुत समय तक मन में कोई पाप या कुभाव प्रवेश नहीं कर पाते। सरलता एवं पवित्रतामय वे शब्द हृदय को स्पर्श करके मन की गहराई में लय हो जाते हैं और अद्‌भुत ईश्वरीय भावमय परिवेश की सृष्टि करते हैं, जिसमें से निकलकर पाठक को स्वस्थिति में वापस आने में समय लगता है।

श्रीरामकृष्ण की दिव्य-वाणी को इस प्रकार से इसमें पिरोया गया है कि अमृत-सागर रूपी इस पुस्तक के एक पृष्ठ को स्पर्श करने पर मानव इसमें डूबने के लिये स्वत:स्फूर्त बद्ध हो जाता है। एकबार रसास्वादन करने पर मधु लोभी भ्रमर के समान वह बारम्बार कथामृत के उन पृष्ठों पर मँडराता रहता है, पुन: उसका कहीं किसी वस्तु पर वैसा आकर्षण नहीं रहता है। ○○○

क्या अद्भुत दिन था !

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

''कहाँ जा रहे हो दादा? मुझे बताओ,'' छोटे बतुल ने नरेन का हाथ खींचा। लेकिन नरेन अपने चचेरे भाई को देखकर मुस्कराया और बिना एक शब्द बोले अपना सिर हिला दिया। शीघ्र ही, वे एक बड़े मेले के मैदान में पहुँच गए, जहाँ बहुत से लोग सजे हुए मण्डपों के चारों ओर मिल रहे थे।

''यह एक त्यौहार है,'' बतुल ने ताली बजाई। 'क्या अद्भुत बात है !''

''हाँ, शिव उत्सव,'' नरेन ने कहा। ''अब पास रहो, वरना तुम मेला में खो सकते हो ...''

दोनों लड़के शिव और पार्वती की छवियों की पूजा करते हुए एक मण्डप से दूसरे मण्डप में गए। ''दादा, मुझे गणेश की मूर्ति चाहिए,'' बतुल ने अचानक कहा। ''एक छोटा-सा,'' उसने अपने हाथों से नापा।

''बहुत अच्छा,'' नरेन ने सिर हिलाया। ''और मैं अपने लिए एक शिव का चित्र लूँगा, जिसे मैं अपने बिस्तर के पास रख सकूँ ...।'' उन्हें विभिन्न आकारों और सभी प्रकार

के रंगों में मिट्टी के चित्र बेचनेवाली एक दुकान मिली। बतुल ने दोनों हाथ और दोनों पैर से रेंगते हुए एक बाल गणेश को चुना, उसकी उठी हुई सूंड़ में एक गोल मिठाई थी। नरेन को अपने शिव को खोजने में कुछ समय लगा, किन्तु जब उसे दिखा, तो वह खुशी से चिल्लाया, 'बस मुझे यही चाहिए था !'' भस्म लगाये हुए, भगवान शिव सफेद पहाड़ों की शृंखला के बीच में पद्मासन में पैर मोड़कर गहरे ध्यान में बैठे हुए। दुकानदार को भुगतान करते हुए उसने बतुल से कहा, 'सूरज ढलने वाला है ... घर वापस जाने का समय हो गया है ...''

सड़कों पर शाम के समय यातायात की भीड़ थी। ''चलो, जल्दी करो,'' नरेन ने अपने चचेरे भाई से कहा। ''मैं थक गया हूँ दादा,'' पीछे चलते हुए छोटे लड़के ने शिकायत के स्वर में कहा।

''देखो, हम लगभग घर तक पहुँच गये हैं,'' नरेन ने दूर से मकान की ओर इशारा किया और सड़क पार करने लगा। जैसे ही वह दूसरी ओर पहुँचा, यातायात के शोर को भेदती हुई

एक चीख सुनाई दी, ''दादा ...''

नरेन इधर-उधर घूमा, उसकी आँखें डर से सहम गईं। सड़क के बीचों-बीच बतुल रुक गया। एक गाड़ी उसकी ओर आ रही थी, चालक, दौड़ते हुए घोड़े को नियन्त्रित करने में असमर्थ था, घोड़ा पागल की तरह उसकी ओर चला आ रहा था। ''रास्ते से हट जाओ,'' वह डरे हुए बच्चे पर चिल्लाया। लेकिन बतुल नहीं हिला। वह काँपता हुआ खड़ा रहा, उसका चेहरा डर से सफेद हो गया।

ऐसा लग रहा था कि वह कुरदरा खुरों के नीचे कुचला जाएगा, लेकिन नरेन समय रहते उसके पास पहुँच गया और उसे सुरक्षित खींच लिया। गाड़ी आगे बढ़ गई, चालक ने राहत की दृष्टि से पीछे मुड़कर देखा। राहगीरों ने जमकर तालियाँ बजाई। ''क्या बहादुर लड़का है !'' उन्होंने नरेन को थपथपाया; लेकिन उसने कोई ध्यान नहीं दिया, उसका ध्यान बतुल पर था। छोटे लड़के की धूल को झाड़ते हुए, उसने उसे उसके पैरों पर खड़ा करने में मदद की और यह सुनिश्चित करने के बाद कि उसे चोट नहीं लगी, उसने कहा, ''जब हम घर पहुँचेंगे, तो किसी से एक शब्द भी न कहना, नहीं तो वे व्यर्थ चिन्ता करेंगे ...''

लेकिन जैसे ही उन्होंने दरवाजे पर कदम रखा, बतुल दौड़कर नरेन की माँ के पास गया। ''चाची,'' वह चिल्लाया, ''मैं लगभग एक गाड़ी के नीचे आ गया था !''

भुवनेश्वरी देवी चौंककर अपने बेटे की ओर मुड़ी। ''क्या यह सच है, नरेन?''

''इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं माँ !'' उसने उत्तर दिया, ''देखो, हम ठीक हैं ...''

''घोड़ा मेरी ओर दौड़ता हुआ आया, चाची,'' बतुल उत्साह से आगे कहा। 'और अगर दादा ने मुझे दूर नहीं किया होता, तो मुझे बहुत चोट लग सकती थी... बहुत सारे लोग थे लेकिन हमारी मदद करने के लिए कोई नहीं आया ... वे सभी बहुत डरे हुए थे ... लेकिन दादा बिलकुल भी नहीं डरे !''

भुवनेश्वरी देवी का चेहरा खुशी से चमक उठा। उन्होंने दोनों लड़कों को अपनी बाँहों में जकड़ लिया। ''मुझे तुम पर बहुत गर्व है, नरेन,'' उन्होंने अपने बेटे से कहा। ''तुमने सच्ची वीरता दिखायी। हमेशा वीर बनो, मेरे बच्चे !... हमेशा संकट में लोगों की मदद करो ! ...''

नरेन ने बतुल को मुस्कराते हुए कहा, ''आज का दिन हमारे लिए कितना रोमांचकारी था!''

बतुल की आँखें चमक उठीं, ''हाँ दादा, और मुझे आशा है कि कल भी आश्चर्यों से भरा होगा !''

* * *

'पृथ्वी वीरों द्वारा भोगी जाती है' – यह अटल सत्य है। वीर बनो। हमेशा कहो, 'मुझे कोई डर नहीं है।'' यह सबको बताओ – ''डरो मत।'' भय मृत्यु है, भय पाप है, भय नरक है, भय अधर्म है, भय गलत जीवन है। इस संसार में जितने भी नकारात्मक विचार और चिन्तन हैं, वे इस डर की बुरी आत्मा से निकले हैं।

– स्वामी विवेकानन्द

पुरखों की थाती

अहो बत सभा सभ्यैरियं मौनादधः कृता ।
सन्तो वदन्ति यत्सत्यं सभां न प्रविशन्ति वा ।।९०२।।

– आह ! कितने दुःख की बात है कि सन्त महात्मा जो जनहित की सत्य की बातें कहते हैं वे प्रतिष्ठित व्यक्तियों (राजनेताओं) की सभाओं में प्रवेश ही नहीं पाती हैं और यदि पहुँच भी जाती है तो वे प्रतिष्ठित व्यक्ति उन पर आचरण करने के बदले मौन धारण कर लेते हैं।

पदस्थितस्य पद्मस्य मित्रे वरुणभास्करौ।
पदच्युतस्य तस्यैव क्लेशदाहकरावुभौ।।९०३।।

– एक अच्छे स्थान में (जलपूर्ण सरोवर में) खिले हुए कमले के लिये जल तथा सूर्य मित्र स्वरूप होते हैं, परन्तु वही पुष्प जब वहाँ से तोड़ लिया जाता है तो ये ही दोनों उसे कष्टकर तथा जलानेवाले हो जाते हैं।

देवपूजा दया दानं दाक्षिण्यं दक्षता दमः।
यस्यैते षड्दकाराः स्युः स देवांशी नरः स्मृतः।।९०४।।

– देवपूजा, दया, दान, उदारता, कुशलता तथा संयम – जिस मनुष्य के जीवन में ये छह दकार हों, उसमें देवताओं का अंश होता है।

प्रायश्चित्त एक शाश्वत तपश्चर्या

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

प्रेमचन्द ने कहा है कि पश्चात्ताप के कड़वे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं। प्रायश्चित्त पर बात करते हुए मुझे प्रायश्चित्त शीर्षक से ही प्रकाशित हिन्दी के दो दिग्गज कथाकारों की दो कहानियों का स्मरण हो रहा है। एक कहानी स्वयं प्रेमचन्द की है और दूसरी भगवतीचरण वर्मा की है। प्रेमचन्द की कहानी इस प्रकार से है। मदारीलाल दस साल से एक कार्यालय में बड़े बाबू हैं। तभी उनका एक पुराना सहपाठी सुबोध उस कार्यालय में सचिव के रूप में कार्यभार सँभालने आता है। सुबोध का स्वभाव अच्छा है। वह सबको साथ लेकर चलता है व सब पर विश्वास करता है। लेकिन मदारीलाल शुरू से ही उससे चिढ़ता है और उसे नीचा दिखाने और चोट पहुँचाने के अवसर में रहता है। एक दिन अवसर पाकर मदारीलाल ठेकेदार का भुगतान करने के लिए सुबोध की मेज पर रखे हुए पाँच हजार रुपए गायब कर देता है। यदि आज के हिसाब से उस राशि का आकलन करें, तो करोड़ रुपए से अधिक ही बैठती है। सुबोध के लिए इतनी अधिक राशि का प्रबन्ध करना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं था। बदनामी और सजा के डर से उसने उसी रात अपनी जीवन लीला समाप्त कर डाली।

सुबह जब मदारीलाल को यह समाचार मिला, तो उसे बहुत बड़ा धक्का लगा। उसे ये अनुमान नहीं था कि उसके इस कार्य का इतना भयंकर परिणाम हो सकता है। वह तो सुबोध को केवल परेशान करना और परेशान देखना चाहता था। अब उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कार रही थी। जब मदारीलाल सुबोध के घर गया, तो उसके बच्चे उससे लिपट कर रोने लगे। सुबोध की पत्नी रामेश्वरी से उसे पता चला कि सुबोध मदारीलाल को अपना अच्छा मित्र ही नहीं, हितैषी भी मानता था। मदारीलाल पश्चात्ताप से भर उठा। सुबोध के बच्चे छोटे थे, इसलिए मदारीलाल ने ही सुबोध को मुखाग्नि दी और तेरहवीं तक क्रिया पर बैठा। उसके बाद रामेश्वरी ने उससे कहा कि वह उनके गाँव जाने का प्रबन्ध कर दे, ताकि जो थोड़ी बहुत जमीन है, उस पर खेती करके अपने बच्चों को पालने की कोशिश करे। मदारीलाल ने इस बारे में विस्तार से पूछा, तो स्पष्ट हो गया कि इतनी जमीन नहीं है, जिससे परिवार का ठीक से गुजर-बसर हो सके।

मदारीलाल ने रामेश्वरी से कहा, ''अगर मैं कुछ सलाह दूँ, तो उसे मानेंगी आप?'' रामेश्वरी ने कहा, ''भैयाजी आपकी सलाह नहीं मानूँगी, तो किसकी सलाह मानूँगी। मेरा दूसरा है ही कौन?'' मदारीलाल ने कहा, ''तो आप अपने घर जाने के बदले मेरे घर चलिए। जैसे मेरे बाल-बच्चे रहेंगे, वैसे ही आपके भी रहेंगे। आपको कष्ट न होगा। ईश्वर ने चाहा, तो कन्या का विवाह भी किसी अच्छे कुल में हो जाएगा।'' विधवा की आँखें सजल हो गईं। बोली, ''मगर भैया जी सोचिए...'' मदारीलाल ने बात काट कर कहा, ''मैं कुछ न सोचूँगा और न कोई बहाना सुनूँगा। क्या दो भाइयों के परिवार एक साथ नहीं रहते? सुबोध को मैं अपना भाई समझता था और हमेशा समझूँगा।'' विधवा का कोई बहाना न सुना गया। मदारीलाल सबको अपने साथ ले गए और आज दस साल से उनका पालन कर रहे हैं। दोनों

बच्चे कालेज में पढ़ते हैं और कन्या का एक प्रतिष्ठित कुल में विवाह हो गया है। मदारीलाल और उनकी स्त्री तन-मन से रामेश्वरी की सेवा करते हैं और उनके इशारों पर चलते हैं। मदारीलाल सेवा से अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

अब प्रायश्चित्त शीर्षक से दूसरी कहानी देखिए, जो भगवतीचरण वर्मा की लिखी हुई है। एक सम्पन्न परिवार में एक चौदह साल की कम उम्र की लाड़ली बहू है। उसी घर में एक कबरी बिल्ली रहती है, जो सुयोग मिलते ही खाने-पीने की चीजों पर हाथ साफ कर जाती है। बहू उस बिल्ली से बहुत परेशान है। उसने बिल्ली को पकड़ने और भगाने के लिए कई कोशिशें की, लेकिन बिल्ली को पकड़ने के उसके सारे प्रयास निष्फल हो गए। एक दिन बहू ने एक कटोरी में दूध भर कर कमरे की चौखट पर रख दिया। जैसे ही बिल्ली दूध पीने में जुटी बहू ने एक पटरा लेकर पूरे जोर से बिल्ली पर पटक दिया। इस पर बिल्ली न हिली-डुली, न चीखी-चिल्लाई बस एकदम उलट गई। आवाज सुन कर घर में काम करनेवाली महरी, मिसरानी और सास सभी घटनास्थल पर आ उपस्थित हुईं।

घर में खाना बनानेवाली मिसरानी ने घर की मालकिन से कहा, ''माँ जी बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है, हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सर हत्या रहेगी।'' निर्णय हुआ कि पड़ोस से फौरन पंडित परमसुख को बुलवाया जाए। वे ही कोई उपाय बतलाएँगे। बिल्ली की हत्या की सूचना बिजली की तरह पूरे गाँव में फैल गई। जब पंडित परमसुख ने खबर सुनी, तो मुस्कुराते हुए पंडिताइन से बोले, ''भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।'' बुलाने पर जब पंडित परमसुख लाला घासीराम के घर पहुँचे, तो उनसे पूछा गया कि बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है? पंडित परमसुख ने जवाब दिया, ''बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बताया जा सकता, वह महूरत भी मालूम हो, जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता चल सकता है।'' जब उन्हें बताया गया कि सुबह सात बजे का समय था, तो पंडित परमसुख ने कहा कि प्रात:काल ब्रह्म-मुहूर्त में बिल्ली की हत्या में घोर कुंभीपाक नरक का विधान है।

पंडित परमसुख ने कहा कि बिल्ली के वजन के बराबर सोने की बिल्ली बनवाकर दान करनी होगी और इक्कीस दिन पाठ करवाना होगा, तभी हत्या का प्रायश्चित्त और शुद्धि सम्भव है। बीस-इक्कीस सेर वजन की बिल्ली के वजन के बराबर सोने की बिल्ली बनवाना, तो असम्भव था अत: पंडित परमसुख ने कम से कम इक्कीस तोले सोने की बिल्ली बनवाकर देने की बात कही। मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया। सोने की बिल्ली के दान के बाद पूजा-पाठ और दान-दक्षिणा पर भी काफी मोल-भाव हुआ। पंडित जी ने अनिष्ट का भय दिखला-दिखलाकर अपनी अधिकांश बातों पर सेठानी को सहमत करवा लिया और कहा कि वह ग्यारह तोले सोना निकालकर दे, ताकि बिल्ली बनवाई जा सके। तभी महरी ने आकर सूचना दी कि बिल्ली तो उठकर भाग गई।

यदि हम इन दोनों कहानियों पर विचार करें, तो प्रायश्चित्त के तथाकथित आदर्श स्वरूप से लेकर प्रायश्चित्त के नाम पर हो रहे लूटतन्त्र तक की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यहाँ पहला प्रश्न उठता है कि प्रायश्चित्त की क्या आवश्यकता है? प्रायश्चित्त वास्तव में एक उपचार प्रक्रिया अथवा पद्धति है, जिससे हम किसी भी प्रकार के पश्चात्ताप की पीड़ा के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि पश्चात्ताप क्या है? पश्चात्ताप का अर्थ है कोई गलत काम करके पछताना अथवा कोई ठीक काम न करके पछताना। पश्चात्ताप वह मानसिक पीड़ा अथवा चिन्ता की स्थिति है, जो किसी अनुचित काम को करने के उपरान्त उसके भयंकर परिणाम या अनौचित्य का ध्यान करके अथवा किसी उचित या आवश्यक कार्य को न करने के कारण होती है। पश्चात्ताप अपनी गलती की स्वीकृति की तरह है। जब तक हम अपनी गलती नहीं स्वीकार करेंगे, उसका सुधार करने की ओर कैसे अग्रसर होंगे? यदि रोग का पता नहीं होगा, तो उसका उपचार कैसे करेंगे?

पश्चात्ताप निदान (डायग्नोसिस) जैसा और प्रायश्चित्त उपचार जैसा होता है। शास्त्रों के अनुसार प्रायश्चित्त वह कार्य अथवा प्रक्रिया है, जिसके करने से मनुष्य पाप से छूट जाता है। मनुष्य गलतियों का पुतला है। अत: गलतियाँ होना स्वाभाविक है। यदि हम इन गलतियों का विश्लेषण करें, तो दो प्रकार की गलतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक अत्यन्त सामान्य गलतियाँ और दूसरी वे गलतियाँ, जो सामान्य नहीं हैं। ऐसी गलतियाँ अपराध की श्रेणी में आती हैं। यदि हमने

किसी को चोट पहुँचाई, किसी का आर्थिक शोषण किया अथवा हमारे कारण से किसी का जीवन समाप्त हो गया, तो ऐसी अवस्था में राज्य का कानून अपना काम करेगा। ये सजा और जुर्माना प्रायश्चित्त नहीं कहला सकता। किसी भी अपराध अथवा गलती के लिए जब हम स्वयं को भी दण्ड देते हैं और भविष्य में किसी भी दशा में उस प्रकार के किसी भी कार्य को न करने का संकल्प लेते हैं, तभी प्रायश्चित्त पूर्ण होता है।

प्रायश्चित्त का अर्थ है समग्र उपचार अथवा होलिस्टिक हीलिंग। यदि हम गलती, अपराध अथवा अधर्म करते हैं, तो बाह्य दण्ड पर्याप्त नहीं। जब हम उसे स्वीकार कर स्वयं भी अपने आपको दण्ड देते हैं, तभी प्रायश्चित्त की प्रक्रिया पूर्ण होती है। स्वयं को स्वयं कैसे दण्ड दें, यह बहुत जटिल है। इसी जटिलता ने प्रायश्चित्त की प्रक्रिया को लूटतन्त्र में बदल दिया है। वास्तविकता यह है कि हम अपराध करने के बाद कानून से बचने का भरसक प्रयास करते हैं। हम अपने अपराध अथवा गलतियों को जस्टीफाई करने में लग जाते हैं। यदि हमसे कोई बड़ी गलती अथवा अपराध हो जाता है, तो प्रायश्चित्त का पहला कदम उसे स्वीकार करना ही है। चर्च में पादरी के समक्ष अपने गुनाहों की स्वीकृति अथवा कंफेशन भी यही है। लेकिन मात्र अपराध स्वीकार करने से ही बात नहीं बनती। उस अपराध के दुष्प्रभाव को भी कम करना अनिवार्य है। यदि किसी की आर्थिक हानि होती है, तो उसकी क्षतिपूर्ति भी अनिवार्य है। लेकिन मात्र क्षतिपूर्ति भी प्रायश्चित्त नहीं है। कई ऐसी स्थितियाँ होती हैं, जिनकी क्षतिपूर्ति हो ही नहीं सकती।

जैसा कि पामर ने कहा है कि सुधार के बिना प्रायश्चित्त ऐसा ही है, जैसे छिद्र बन्द किए बिना नाव में से जल निकालना। मेरे विचार से सुधार का नाम ही प्रायश्चित्त है। सुधार अथवा प्रायश्चित्त के बिना पश्चात्ताप ऐसा ही है, जैसे छिद्र बन्द किए बिना नाव में से जल निकालना। कई लोग पछताते तो बहुत हैं, लेकिन टस से मस नहीं होते। वास्तविक प्रायश्चित्त एक विशुद्ध मानसिक प्रक्रिया है। इसके लिए अनिवार्य है कि हम अपनी मानसिकता ऐसी बनाएँ, जिससे भविष्य में कभी अधर्म अथवा अपराध न हों। हम हर छोटी से छोटी बात को देखें और जो भी गलत लगे, उसे अपने मन रूपी स्लेट से पोंछते रहें। जो सही प्रतीत हो, उसे बार-बार लिखते रहें। प्रायश्चित्त वास्तव में एक सतत तपश्चर्या है।

सतत तपश्चर्या सबसे कठिन होती है। छोटी-छोटी गलतियाँ अथवा कमियाँ ही धीरे-धीरे बढ़कर अपराध का रूप ले लेती हैं। जो प्रायश्चित्त के महत्त्व को जानते हैं, वे प्राय: ऐसा कोई कार्य नहीं करते, जिसके लिए प्रायश्चित्त की आवश्यकता हो। क्योंकि यदि हमसे कोई भयंकर गलती हो जाती है, तो उसका पूर्ण प्रायश्चित्त सम्भव ही नहीं है। यदि हमारी गलती से किसी की मृत्यु या हमसे किसी की हत्या हो जाती है, तो प्रायश्चित्त कैसे सम्भव है? क्या हम किसी भी प्रकार से घटनाओं को वापस उसी अवस्था में ला सकते हैं? क्या हम अपना जीवन देकर किसी अन्य को जीवित कर सकते हैं? शायद नहीं। जिसे हम प्रायश्चित्त कहते हैं, वह आंशिक क्षतिपूर्ति मात्र है। इससे हमारा पाप न कम होता है, न मिटता है। पाप अपना प्रभाव छोड़ता है, तो पुण्य भी अपना प्रभाव छोड़ता है।

पाप के प्रभाव को नष्ट करने के लिए हम जो व्रत, दान आदि करते हैं, उससे हमारा पाप कभी नहीं मिट सकता, लेकिन कुछ अच्छा करके हम सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। पाप के प्रभाव की स्वीकृति से जो मानसिक पीड़ा होती है, वह हमें शान्ति से नहीं बैठने देती। हम अपनी शान्ति के लिये ही प्रायश्चित्त करने को विवश होते हैं। लेकिन हमें शान्ति नहीं मिलती, क्योंकि हमारा प्रायश्चित्त नाम मात्र या दिखावे के लिए होता है। हम प्राय: छोटी-छोटी निरर्थक घटनाओं के लिए प्रायश्चित्त करने का नाटक करते रहते हैं, लेकिन जहाँ प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता होती है, वहाँ चुप हो जाते हैं। प्रतिदिन अपराध करके प्रतिदिन प्रायश्चित्त करने से कोई लाभ नहीं होता। लेकिन हम सभी प्राय: यही करते हैं।

हमारा प्रायश्चित्त प्राय: डर से होता है। डर यह है कि प्रायश्चित्त नहीं किया, तो हमें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, स्वर्ग नहीं मिलेगा। दूसरा, अधर्म अथवा अपराध दिल्ली में किया, उसके प्रायश्चित्त के लिए हरिद्वार जाकर गंगा में डुबकियाँ लगा रहे हैं। पण्डे-पुजारियों को भेंट चढ़ा रहे हैं। चारधाम की यात्रा कर रहे हैं, व्रत, दान कर रहे हैं। जिसका दिल दुखाया है या जिसके साथ कपट किया है, उसे तो भूल ही गए। यदि प्रायश्चित्त नाम की कोई प्रक्रिया है, तो यही है कि जिसके हृदय को जलाया है, उसके हृदय पर मरहम लगाइए, आज ही लगाइए और प्रण कीजिए कि ऐसी गलती फिर कभी नहीं होगी। ○○○

मन जीतो, जग जीतोगे

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

भारतीय सनातन परम्परा में कुछ महान् व्यक्तित्व ऐसे हुए हैं, जिनका प्रभाव केवल अपने काल तक सीमित नहीं है, अपितु युगों-युगों तक मानव-चेतना को आलोकित करता है। वे राष्ट्रचेतना के जागरणकर्ता, चरित्र-निर्माता और आत्मबल के अद्वितीय उपासक हैं। उनका जीवन चंचल मन को साधने की दिव्य साधना है। विशेषत: भ्रमित, स्पर्धात्मक और लक्ष्यहीन होते जा रहे युवा-वर्ग के लिए उनका जीवन आत्मानुशासन का व्यावहारिक मार्गदर्शन है। पद, प्रतिष्ठा, धन, लोकप्रियता की दौड़ में हम बाह्य मन की शान्ति खो बैठते हैं। तनाव, सामाजिक तुलना, भौतिक आकर्षण, ये सब मन को अशान्त कर देते हैं। आज बाह्य उपलब्धियों के बावजूद भी मन अशान्त और अस्थिर होकर तनाव, अवसाद का शिकार होता है। महान् सन्त समर्थ रामदास स्वामी कहते हैं – **'मन करा रे प्रसन्न, सर्व सिद्धीचे कारण'** – 'अर्थात् मन को प्रसन्न और स्थिर करो, क्योंकि सभी सिद्धियों का मूल कारण मन ही है। समर्थ रामदास जी का यह वचन बताता है कि यदि मन संयत है, तो असफलता भी शिक्षक बन जाती है; यदि मन अस्थिर है, तो सफलता भी व्यर्थ सिद्ध होती है। आत्मचिन्तन और सद्विचार से मन को संयत कर अपने मन को प्रसन्न रखें। जिसने मन जीत लिया, वही सच्चा छत्रपति है। आधुनिक युग में 'गुरु' का अर्थ केवल आध्यात्मिक आचार्य नहीं, बल्कि वह कोई भी श्रेष्ठ मार्गदर्शक हो सकता है – **शिक्षक, माता-पिता या कोई आदर्श व्यक्तित्व।** मार्गदर्शन के अभाव में प्रतिभा भटक जाती है; परन्तु गुरु-मार्गदर्शन से वही प्रतिभा राष्ट्रनिर्माण का साधन बनती है। मार्गदर्शन को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है – **'सद्गुरुचरणी ठेवावे मन, तेणे होईल कल्याण।'** (समर्थ रामदास) अपने मन को सद्गुरु के चरणों में स्थिर करो, तभी वास्तविक कल्याण होगा। युवा जब अपने जीवन में किसी उच्च आदर्श को स्वीकार करता है, तब उसकी दिशा स्पष्ट होती है।

युवा का स्वधर्म क्या है? – अध्ययन में निष्ठा, माता-पिता का सम्मान, राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व, चरित्र की शुचिता। **स्वधर्म अर्थात् अपने कर्तव्य** – पर अडिग रहना। जब युवा अपने कर्तव्य को ही साधना मान लेता है, तब उसका जीवन साधारण न रहकर असाधारण बन जाता है। वर्तमानकाल में त्वरित सफलता की लालसा युवाओं को अधैर्य और अनैतिक मार्ग की ओर ले जाती है। समर्थ रामदास कहते हैं – **'स्वधर्माचे पालन करावे'** – स्वधर्म का पालन करें। कर्तव्यनिष्ठा ही सच्ची वीरता है। आज के युवा को केवल तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति और सामाजिक संवेदनशीलता भी चाहिए। अनेक वीरों ने आत्मबल और राष्ट्रचेतना की प्रभा से प्रेरित होकर समाज और राष्ट्र की सेवा की है। वे केवल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की बात नहीं करते; वे सामूहिक उत्थान के पक्षधर रहे हैं। उनके इन विचारों से युवाओं में पराक्रम, संगठन और राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत होती है।

मन, धर्म, मर्यादा, नेतृत्व और राष्ट्रनिर्माण की गाथाएँ

भारतीय इतिहास में कुछ घटनाएँ अत्यधिक प्रसिद्ध हो जाती हैं, परन्तु गुरु-शिष्य के कुछ ऐसे छोटे-छोटे प्रेरक प्रसंग भी हैं, जो चरित्र-निर्माण के शाश्वत सूत्र हैं और राष्ट्रचेतना के निर्माण के आदर्श को अधिक स्पष्ट करते हैं। समर्थ रामदास और शिवाजी महाराज के सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही प्रेरक प्रसंग और अनुपम उदाहरण परम्परा में प्रचलित हैं, जहाँ आध्यात्मिक शक्ति और वीरता का अद्भुत संगम दिखाई देता है, जो युवाओं के लिए अमूल्य शिक्षाएँ प्रदान करते हैं।

गुरु की भिक्षा और राजा की परीक्षा

एक बार छत्रपति शिवाजी महाराज के गुरु समर्थ रामदास स्वामी भिक्षा के लिए नगर में गए। उस समय छत्रपति शिवाजी महाराज भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि उनके गुरु सामान्य घरों से अन्न ग्रहण कर रहे हैं। शिवाजी के मन में वेदना हुई – 'मेरे रहते गुरु भिक्षा क्यों माँग रहे हैं?' उन्होंने गुरु से आग्रह किया कि वे राजमहल में निवास करें। गुरु ने उत्तर दिया – 'राजा का कर्तव्य राज्य सम्भालना है; साधु का कर्तव्य लोक में समभाव रखना। यदि मैं महल

में रहूँगा, तो साधु नहीं रहूँगा।'

शिक्षा – पद-प्रतिष्ठा के कारण मूल स्वभाव न बदलें। सुविधा का आकर्षण चरित्र को शिथिल न कर दे।

राज्य का समर्पण : विनम्रता की विजय

जब शिवाजी महाराज ने अनेक संघर्षों के पश्चात् स्वराज्य की स्थापना की, तब वे समर्थ रामदास स्वामी के दर्शन हेतु गए। उन्होंने अपने राज्य का दानपत्र बनवाकर गुरु के चरणों में रख दिया और कहा – 'यह सम्पूर्ण राज्य आपका है; मैं तो आपका सेवक मात्र हूँ।' यह घटना केवल औपचारिक विनम्रता की नहीं थी; यह उनके मन की स्थिति थी – **अहंकार पर विजय**। समर्थ रामदास ने दानपत्र स्वीकार किया, परन्तु तुरन्त शिवाजी को वापस सौंपते हुए कहा – 'राज्य मेरा है, पर तुम उसके सेवक और संरक्षक हो। इसे धर्म और प्रजा-हित के लिए चलाओ।'

शिक्षा – यहाँ गुरु ने उन्हें दो महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी – सत्ता में रहकर विवेक-वैराग्य जाग्रत रखो। राज्य व्यक्तिगत नहीं, लोकधर्म का साधन है। विनम्रता ही उपलब्धि का वास्तविक आभूषण है। पद अधिकार नहीं, उत्तरदायित्व है। शक्ति का लक्ष्य सेवा हो, स्वार्थ नहीं। यह कथा केवल राजा और सन्त की नहीं, बल्कि मनोनिग्रह और राष्ट्रधर्म की है।

अहंकार पर प्रहार

एक अन्य प्रसंग में कहा जाता है कि एक बार शिवाजी के मन में अपने पराक्रम का क्षणिक गर्व उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे कि उन्होंने अपनी सामर्थ्य से यह राज्य स्थापित किया है। समर्थ रामदास ने एक पत्थर को तुड़वाया। उसके भीतर से एक मेंढक जीवित निकला। समर्थ रामदास जी ने पूछा – 'पत्थर के भीतर इसका पालन-पोषण किसने किया?' शिवाजी मौन हो गए। गुरु ने कहा – 'जिसे तुमने नहीं पाला, वह भी ईश्वर की व्यवस्था से जीवित है, फिर अपने पराक्रम का श्रेय स्वयं को क्यों? मन में अहंकार मत आने दो।' उसी की कृपा से राज्य भी सुरक्षित है। यह शिक्षा मन की विजय की थी – बाहरी शत्रु से भी बड़ा शत्रु अहंकार है।

सत्ता में संयम – एक प्रसंग में शिवाजी ने किसी अपराधी के प्रति कठोर दण्ड का विचार किया। समर्थ रामदास ने उन्हें समझाया – 'राजधर्म में न्याय हो, पर क्रोध न हो।' शिवाजी ने दण्ड को न्यायोचित सीमा में रखा। निर्णय लेते समय भावना नहीं, विवेक मार्गदर्शक हो। अधिकार के साथ आत्मसंयम अनिवार्य है। नेतृत्व का अर्थ है – धैर्य और न्याय। मन को विवेक में स्थिर करो; आवेग में नहीं।

युद्धभूमि और ध्यान : साहस का सन्तुलन – कठिन युद्धों के बीच भी शिवाजी प्रातःकाल जप-ध्यान करते थे। उनके गुरु ने उन्हें सिखाया – 'बाहुबल से पहले आत्मबल जगाओ।' युद्ध में साहस और जीवन में साधना – यह द्वन्द्व नहीं, समन्वय था। परिश्रम के साथ आत्मचिन्तन आवश्यक है। बाहरी संघर्ष जीतने से पहले भीतर की अशान्ति जीतो। अनुशासन ही दीर्घकालीन सफलता का आधार है।

संगठन और व्यायामशालाएँ : मन से समाज तक समर्थ रामदास ने मठों और व्यायामशालाओं की स्थापना कर युवाओं में शारीरिक-मानसिक बल जगाया। शिवाजी ने उसी ऊर्जा को स्वराज्य-संगठन में रूपान्तरित किया।

शिक्षा – व्यक्तिगत विकास को सामूहिक उत्थान से जोड़ो।

उपसंहार

समर्थ रामदास ने देखा कि पराधीन समाज की मूल समस्या बाहरी नहीं, भीतरी दुर्बलता है। इसलिए उन्होंने शिवाजी को राज्य से पहले मन पर विजय प्राप्त करना सिखाया।

युवा मित्रो! यदि हम मन को अनुशासित रखें अर्थात् यदि मन निर्भय, अनुशासित और धर्मनिष्ठ हो, तो राष्ट्र स्वतः सशक्त हो जाएगा। पर सिद्धान्त वही है – **सफलता में विनय, शक्ति में संयम, नेतृत्व में सेवा और जीवन में साधना हो।** इन प्रसंगों से युवा क्या सीख सकते हैं? (१) सफलता में विनम्रता – उपलब्धि के बाद अहंकार नहीं, कृतज्ञता हो। (२) शक्ति का उद्देश्य – शक्ति स्वार्थ के लिए नहीं, समाज के कल्याण के लिए हो। (३) मनोनिग्रह ही वास्तविक वीरता – तलवार चलाना वीरता नहीं; अहंकार, भय और मोह पर विजय पाना ही सच्ची वीरता है।

समर्थ रामदास की शिक्षा और शिवाजी के आचरण – दोनों मिलकर यह सिद्ध करते हैं कि मन जीतो – अहंकार, भय, क्रोध, मोह पर विजय प्राप्त करो। जग जीतोगे – समाज में न्याय, सेवा और नेतृत्व की स्थापना करो। इन प्रसंगों को केवल पढ़ो नहीं, बल्कि जीवन में आत्मसात् करो। इसी में युवा शक्ति और राष्ट्र का उत्थान निहित है। ○○○

पुराणों में सृष्टि एवं सृष्टि-प्रक्रिया

डॉ. जया पाण्डेय

सेन्टेनरी विजिटिंग फेलो

भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वेद के अनुसार सृष्टि और प्रलय; ये दो विश्व के अनिवार्य अंग है – सृष्टि के पहले क्या था? इसको जानने वाला कौन है? सृष्टि से पूर्व कोई असत् (भंगुर) पदार्थ नहीं था। कोई लोक नहीं था। अन्तरिक्ष भी नहीं था। न रात्रि का अस्तित्व था, न दिन का अस्तित्व था, अन्धकार मात्र था। चारों ओर जल ही जल था और कुछ भी नहीं था। इस प्रकार वैदिक सृष्टि का विस्तृत स्वरूप हमें नारदीय एवं हिरण्यगर्भ सूक्त में प्राप्त होता है।

उपनिषद में सृष्टि – सभी उपनिषदों का सार तत्त्व एक ही है। सबसे पहले एक अव्यक्त रूप था और उसी से व्यक्ति रूप जगत की सृष्टि हुई। अव्यक्त रूप ब्रह्म (परब्रह्म) से ही समस्त जगत इसी से उत्पन्न होता है और लय को प्राप्त हो जाता है। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।[१]

द्वैत दर्शन – प्रलय के अन्त में सृष्टि करने की परमात्मा की इच्छा हुई। प्रकृति के गर्भ में परमात्मा प्रवेश करके सृष्टि की रचना प्रारम्भ करते हैं। तथा तीनों गुणों का परस्पर वैषम्य उत्पन्न होता है, चेतन-अचेतन अंशों को उदर में निःक्षेप कर परमात्मा ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। क्रमशः वे जगत की उत्पत्ति अर्थात् पंच भूतात्मक सृष्टि की रचना करते हैं।

पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है। 'सर्ग' (सृष्टि) पुराणों के पञ्चलक्षणों में आद्य तथा मुख्य लक्षण है। पौराणिक सृष्टि-विद्या में सांख्य दर्शन के द्वारा निर्दिष्ट सृष्टि-विद्या का विशेष अवलम्बन तथा आश्रय लिया गया है। पुराणों में वर्णित सृष्टि-तत्त्व महाभारत तथा मनुस्मृति के एतद् वर्णन के अनन्तर किया गया है। सांख्य दर्शन मानता है कि सृष्टि का विकास दो शाश्वत सिद्धान्तों की परस्पर क्रिया का परिणाम है – पुरुष (चेतना) और प्रकृति, परन्तु पुराणों में वे दोनों ही विष्णु के दो रूप माने गए हैं।

पुराण विमर्श में उल्लेख मिलता है कि – विष्णु के परम

(उपाधिरहित) स्वरूप से प्रधान और पुरुष दो रूप होते हैं तथा प्रलय की दशा में अलग हो जाते हैं। भगवान विष्णु कालशक्ति के द्वारा ही विश्व की सृष्टि तथा प्रलय क्रिया करते हैं। पुराणों के अनुसार यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। यह हमेशा से वैसा ही था, जैसा अब है और हमेशा ऐसा ही रहेगा।

यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्।[२]

तब प्रलय की सम्भावना कैसे? ऐसा कैसे कि यह संसार हर कुछ वर्षों में नष्ट और नष्ट होता प्रतीत होता है? इसका उत्तर है – 'प्रवाहनित्यता' अर्थात् शाश्वत प्रवाह। जो व्यक्ति गंगा में डुबकी लगाता है, वह उसी पानी में डुबकी नहीं लगाता, जिसमें उसने एक क्षण पहले डुबकी लगायी थी। जल तो निरन्तर प्रवाहमान है, एक पल के लिए भी उसमें ठहराव नहीं है। पानी प्रति पल परिवर्तित हो सकता है, लेकिन प्रवाह धारा स्थिर रहती है। प्रकृति, पुरुष, व्यक्ति (जगत) तथा काल ये चारों रूप उसी परमात्मा विष्णु के हैं। जगत की सृष्टि उस विष्णु की क्रीड़ा ही समझनी चाहिए। सांख्य के सृष्टितत्त्व का पौराणिक सृष्टतत्त्व के ऊपर प्रभाव का विश्लेषण अनेक विद्वानों ने किया है।

नव सर्ग : पुराणों में सृष्टि के नव प्रकार बताये गए हैं। सर्ग मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं – (१) प्राकृतसर्ग (२)

वैकृत सर्ग (३) प्राकृत वैकृतसर्ग। पुराणों का कथन है कि प्राकृतसर्ग अबुद्धिपूर्वक होता है तथा वैकृतसर्ग बुद्धिपूर्वक होता है –

प्राकृताश्च त्रये सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः।

बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याधाः पञ्च वैकृताः।।[३]

प्राकृतसर्ग ३, वैकृतसर्ग ५ और प्राकृत-वैकृत सर्ग १, इस प्रकार कुल ९ सर्ग हैं।

१. प्राकृत सर्ग – प्राकृत सर्ग की संख्या ३ है – १. ब्रह्मसर्ग २. भूतसर्ग ३. वैकारिकसर्ग।

१. ब्रह्म सर्ग – ब्रह्म सर्ग प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मस्तु सः।[४]

महत् तत्त्व के सर्ग को ब्रह्मा का प्रथम सर्ग कहते हैं। 'ब्रह्मसर्ग' में ब्रह्मन् शब्द भगवद्गीता के अनुसार महत् ब्रह्मा अर्थात् बुद्धितत्त्व का बोधक है। (गीता १४/३) सांख्य-दर्शन के अनुसार बुद्धि या महत्तत्त्व ही प्रकृति-पुरुष के संयोग का प्रथम परिणाम है।

२. भूतसर्ग – तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते।।[५]

पञ्चतन्मात्राओं की सृष्टि का यह अभिधान है। तन्मात्राएँ पृथिव्यादि पञ्चभूतों की अत्यन्त सूक्ष्मावस्था के द्योतक तत्त्व हैं। ये अविशेष नाम से सांख्य में प्रख्यात् हैं।

३. वैकारिक सर्ग –

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चेन्द्रियकः स्मृतः।

इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः।।[६]

यह इन्द्रिय सम्बन्धी सृष्टि का नाम है। सांख्य शास्त्राभिमत प्रक्रिया यहाँ पुराणों को अभिमत है कि अहंकार के तामस रूप से पञ्च तन्मात्राओं का जन्म, सात्त्विक रूप से इन्द्रियों का जन्म तथा राजसरूप दोनों की सृष्टि में समान-भाव से क्रियाशील रहता है। इसलिए उस रूप से किसी पदार्थ का उदय नहीं होता।

२. वैकृत सर्ग की संख्या पाँच है – १. मुख्य सर्ग २. तिर्यक् सर्ग ३. देव सर्ग ४. मानुष सर्ग ५. अनुग्रह सर्ग

मुख्य सर्ग –

बहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मा नगात्मकः।

मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्।।[७]

विष्णु पुराण के अनुसार (१/५/३-९) सर्ग के आदि में ब्रह्माजी के पूर्ववत् सृष्टि का चिन्तन करने पर पहले पञ्चपर्वा अविद्या के रूप में अबुद्धिपूर्वक तमोगुणी सृष्टि की उत्पत्ति हुई। ये सब प्रायः तमोमय (अज्ञानी), विवेक से रहित, अनुचित मार्ग का अवलम्बन करनेवाले (उत्पथग्राहिणः) और विपरीत ज्ञान को ही यथार्थ ज्ञान माननेवाले होते हैं। ये सब अहंकारी, अभिमानी, अठाइस प्रकार के वधों से युक्त, अन्तःप्रकाश तथा परस्पर एक दूसरे की प्रवृत्ति को न जाननेवाले होते हैं। स्थावर सृष्टि के बाद जंगम सृष्टि का यह प्रथम रूप उदित हुआ।

देव सर्ग – तिर्यक्योनि की सृष्टि से ब्रह्मा को प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी प्रसन्नता का हेतु वह सर्ग है, जो परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष का साधक सिद्ध हो। तिर्यक् स्रोत का सर्ग इस तात्पर्य में सहायक न होने से उन्होंने ऊर्ध्व स्रोतवाले प्राणियों का सृजन किया –

प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतः समुद्भवाः।

तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गो हि स स्मृतः।।[८]

यह ऊर्ध्व लोक में निवास करनेवाला सात्त्विक वर्ग है। इस सृष्टि के प्राणी विषय-सुख की प्रीति से सम्पन्न होते हैं, बाह्य तथा आभ्यन्तर दृष्टि से युक्त होते हैं। ये भीतरी-बाहरी प्रकाश से युक्त होते हैं।

अर्वाक्स्रोत सर्ग (मानुष सर्ग) –

तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः।

प्रादुर्बभौ तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः।।[९]

पूर्व का सर्ग भी ब्रह्मा जी की दृष्टि में पुरुषार्थ का असाधक ही निकला। इसलिए सत्यसंकल्प ब्रह्मा ने फिर अपने ध्यान से एक नवीन प्राणिवर्ग का निर्माण किया, जो पृथ्वी पर ही भ्रमण करनेवाले जीव थे (अर्वाक्स्रोतसः)। इनमें सत्त्व, रज तथा तम – इन तीनों गुणों का आधिक्य रहता है, यह इनका वैशिष्ट्य है। तमोगुण के कारण वे दुखबहुल होते हैं। रजोगुण के कारण वे अत्यन्त क्रियाशील होते हैं और सदा कार्य में संलग्न रहते हैं। सत्त्वगुण के कारण बाह्य आभ्यन्तर ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। इस सर्ग के प्राणी 'मनुष्य' कहलाते हैं।[१०]

ततोर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।।[११]

अनुग्रह सर्ग – विष्णुपुराण इसे सात्त्विक-तामस कहकर केवल संकेत करता है (विष्णु १/५/२४)। जबकि मार्कण्डेय ने स्पष्ट करते हुए (४७ अ. २८-२९ श्लो.) चार प्रकार का बतलाया है – विपर्यय, सिद्धि, शान्ति तथा तुष्टि। (६/६७/६८) सांख्य में यह प्रत्यय सर्ग कहा गया है,

जिसके चार भेद विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि नाम से प्रख्यात हैं। [१२]

वायुपुराण की दृष्टि कुछ भिन्न ही है। उनमें इन चारों की व्यवस्था भी की गयी है –

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थितः।

विपर्येण शक्त्या च तुष्टधा सिद्ध्या तथैव च।।[१३]

स्थावरों में विपर्यय रहता है, तिर्यग्योनि में शक्ति, मनुष्यों में सिद्धि तथा देवों में तुष्टि होती है। समस्त प्रकृतसर्ग प्रकृति के अनुग्रह से उत्पन्न होने के कारण ही अनुग्रह सर्ग कहलाता है। वायुपुराण का यह वर्णन बड़ा ही रोचक तथा साहित्यिक चमत्कार से मण्डित है –

अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः।

पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।।[१४]

संसार रूपी वृक्ष

बीज	अव्यक्त (प्रकृति)
स्कन्ध	बुद्धि
इन्द्रिय	अंकुर
महाभूत (पञ्च)	शाखा
विशेष (= पञ्च विषय)	पत्र
धर्म तथा अधर्म	पुष्प
सुख तथा दुख	फल
सब प्राणी	पक्षी

वायुपुराण इस समस्त प्राकृत सर्ग को अनुग्रह सर्ग बताता है।

कौमार सर्ग – यह अन्तिम सर्ग प्राकृत-वैकृत उभयात्मक माना गया है। इस शब्द से सनत्कुमार के उदय का संकेत है। क्योंकि भागवत पुराण में 'कौमार सर्ग' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है –

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः।

चचार दुश्चरं ब्रह्मचर्यमखण्डितम्।।[१५]

यह सर्ग उभयात्मक अर्थात् प्राकृत-वैकृत उभयरूप माना गया है। इसके विषय में टीकाकारों में एक मत नहीं है। वल्लभाचार्यजी ने इन्हें देव और मनुष्य मानकर इस द्विविधत्व का हेतु खोज निकाला है।

प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः।

सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।।[१६]

भागवत के निम्बार्की व्याख्याकार शुकदेवाचार्य ने इसका खण्डन किया है कि सनत्कुमार कभी मनुष्य कोटि में नहीं माने गये हैं। प्राणि-सृष्टि में नाना प्रकार के प्राणियों का निर्माण किस प्रकार हुआ? इस प्रश्न का भी समाधान पुराणों से प्राप्त होता है। प्राणियों में असुर, सुर, पितर तथा मनुष्य मुख्य होते हैं। इसलिए इनकी उत्पत्ति का प्रकार भी बड़ी सुन्दरता से पुराणों में बतलाया गया है।

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।

इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः।।[१७]

सृष्टि की कामना करने पर जब ब्रह्माजी दत्तचित्त हुए, तब प्रथमतः ब्रह्माजी के जंघा से असुर उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के मुख से सुरों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के पार्श्व से पितरों का और रजोमय देह से रजःप्रधान मनुष्यों की सृष्टि हुई। इस प्रकार चार प्राणिवर्ग का सम्बन्ध चार काल-विभाग से है – असुर का सम्बन्ध रात्रि से, सुर का दिन से, पितरों का सन्ध्या से और मनुष्य का प्रातःकाल से है।

इस प्रकार नव सर्ग का सृजन करने के बाद तीन प्रकार की सृष्टि पुराणों में अत्यन्त कमनीय रूप से प्रतिपादित है – १. ब्राह्मी सृष्टि २.मानसी सृष्टि ३. रौद्री सृष्टि

ब्राह्मी सृष्टि – भगवान विष्णु की प्रेरणा से उनके ही नाभिकमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी ने दिव्य शतवर्ष तक तपस्या की। तब उन्होंने देखा कि वह जल तथा उनका आसनभूत कमल प्रबल वायु के वेग से काँप रहा है। सृष्टि से प्राक् काल में यह उस दशा का सूचक है, जब एकार्णव - समस्त समुद्र के ऊपर वायु का ही प्रबल आघात होता रहता है। तपस्या तथा अध्यात्म ज्ञान के बल पर उन्होंने उस प्रबल वायु को तथा विशाल जलराशि का पान कर डाला। अवशिष्ट बचे हुए वियद्व्यापी कमल को देखकर ब्रह्मा ने विचार किया कि इसी के द्वारा पूर्व काल में प्रकृति में लीन लोकों की रचना करूँगा। फलतः उन्होंने उस आकाशव्यापी कमल में स्वयं प्रवेश कर उसे तीन भागों में विभक्त कर दिया, यद्यपि वह चौदह भागों में विभक्त होने के योग्य था। इन्हीं भागों का नाम है – भूः, भुवः तथा स्वः। कर्म का राज्य इन्हीं लोकों में सीमित है। महः, जनः, तपः, सत्यं, इन चार लोकों में उन लोगों का निवास होता है, जो निष्काम कर्म करते हैं। ब्रह्मा ने पुनः स्थावर से लेकर देवपर्यन्त सृष्टि की, परन्तु जब उस सृष्टि की वृद्धि आगे न बढ़ सकी और उनकी सृष्टि

का प्रयोजन सिद्ध नहीं होने लगा, तब उन्होंने ९ मानसपुत्रों का सर्जन किया – भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरस्, मरीचि, दक्ष, अग्नि तथा वसिष्ठ। ख्याति, भूति आदि नव कन्याओं को भी उत्पन्न कर इन्हें पत्नी होने के लिए प्रदान किया, जिससे आगे चलकर सृष्टि का विस्तार हुआ।

मानसी सृष्टि – ब्रह्मा की सृष्टि मानसिक ही होती है। वे शरीर-संयोगपूर्वक सृष्टि नहीं करते। जीवों के पूर्व जन्म में किये गए कर्मों को जानकर ही ब्रह्मा उन्हें उत्पन्न करते हैं। ब्रह्मा इन कर्मों को भागवत-प्रदत्त ज्ञान द्वारा ही जानकर सृष्टि करते हैं। ब्रह्मा की मानसी सृष्टि द्वारा उत्पादित मरीचि, कश्यप आदि अनेक अधिकारी पुरुष होते हैं, जो ब्रह्मा के साथ मिलकर उन्हीं की प्रेरणा से सृष्टि करते हैं। इसीलिए तो ये भागवत में नव ब्रह्मा के नाम से पुकारे गये हैं। इसलिये प्रजापति कश्यप से देव-दैत्य, पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम सब जन्तुओं का उदय होता है। कश्यप की निरुक्ति भी उनकी सृष्टि-शक्ति की पर्याप्त द्योतिका है। ब्राह्मणग्रन्थों ने 'कश्यप: पश्यको भवति' कहकर कश्यप का अर्थ निर्वचन किया है – देखनेवाला अर्थात् 'अपनी दृष्टि से सृष्टि करनेवाला'। महाभारत में भी मानसी सृष्टि की परिभाषा इसी तथ्य की पोषिका है –

प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत् प्रभुः।
तथैव देवान् ऋषयस्यतपसा प्रतिपेदिरे।।
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षयाव्यया।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा।।

मानसी सृष्टि की परिभाषा है, वह सृष्टि जो आदि देव ब्रह्मा द्वारा वेद-मूलक, अक्षय, अव्यय तथा धर्मानुकूल हो। मानसी सृष्टि के अनन्तर ही बैजी सृष्टि होती है, जिसका वर्णन वैकृत सर्ग में है।

रौद्री सृष्टि – इनसे पूर्व सनन्दन, सनातन आदि चारों कुमारों की सृष्टि ब्रह्मा ने सृष्टि की वृद्धि के लिये ही की थी, परन्तु सन्तान तथा संसार के प्रति उनके औदासीन्य तथा निरपेक्षभाव को देखकर पितामह के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसी क्रोध से प्रचण्ड सूर्य के समान प्रकाशमान रुद्र का आविर्भाव हुआ। रुद्र के शरीर का वैशिष्ट्य यह था कि उनका आधा शरीर नर के आकार में था और अपर आधा शरीर नारी के आकार में था। ब्रह्माजी के आदेश से रुद्र ने अपने शरीर का नारी और पुरुष दो भागों में विभाजन कर दिया। पुन: पुरुषभाग को ग्यारह भागों में विभक्त किया तथा नारी भाग को सौम्य-क्रूर, शान्त-अशान्त, श्याम-गौर आदि अनेक रूपों में विभक्त किया। रुद्र के द्वारा प्राकट्य यह सृष्टि रौद्री सृष्टि के नाम से पुराणों में विदित है।[१८]

भौगोलिक सृष्टि – पुराण के अनुसार पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है। पृथ्वी उत्तर दक्षिण में नीची एवं मध्य में ऊँची चौड़ी है। यह पृथ्वी लवण, दधि, सुर, घृत, दुग्ध जल, आदि के समुद्र से घिरी हुयी है। पृथ्वी पर सप्त द्वीप हैं, पुराण में पृथ्वी पर सात द्वीपों का उल्लेख प्राप्त होता है। राजा प्रियव्रत के सात पुत्र हुए। उन्होंने अपने एक-एक पुत्रों को एक-एक द्वीप प्रदान किया। इस प्रकार ये सप्त द्वीप राजा के सप्त पुत्रों के कारण प्रसिद्ध हुए।

१. जम्बू द्वीप : जम्बू द्वीप का परिमाण एक लाख योजन था। श्री बलदेव उपाध्याय के अनुसार – ''जम्बू द्वीप आरम्भ काल में भारतवर्ष का ही सूचक देश था, परन्तु शकों तथा कुषाणों के आगमन से भारतीयों की भौगोलिक दृष्टि विशेषरूप से विस्फारित हुई और उस युग तक बहुत से अज्ञात देश भी भारतीयों की ज्ञान सीमा के भीतर विराजमान हो गए। ऐसे ही युग में जम्बू द्वीप के नव वर्षों की कल्पना हमारे पुराणकारों ने की।''[१९]

२. प्लक्ष द्वीप राजा प्रियव्रत के द्वितीय पुत्र मेधातिथि को प्राप्त हुआ

३. शाल्मलि द्वीप राजा प्रियव्रत के तृतीय पुत्र वपुष्मान को मिला।

४. कुश द्वीप राजा प्रियव्रत के चतुर्थ पुत्र ज्योतिषमान को प्राप्त हुआ, जिसका आधुनिक नाम नूबिया है।

५. क्रौंच द्वीप राजा प्रियव्रत के पंचम पुत्र क्रौंच को प्राप्त हुआ।

६. शाक द्वीप – राजा प्रियव्रत के छठवें पुत्र भव्य को प्राप्त हुआ। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार – शाक द्वीप की पहचान यूनानी लेखकों के द्वारा वर्णित सिथिया के रूप में की जाती है।

७. पुष्कर द्वीप – राजा प्रियव्रत ने अपने सातवें पुत्र सवन को पुष्कर द्वीप का राजा नियुक्त किया।

जम्बू द्वीप के नौ वर्ष : पुराण में प्राप्त सात द्वीपों में प्रथम द्वीप 'जम्बू द्वीप' है। जम्बू द्वीप के राजा प्रियव्रत हुए। राजा प्रियव्रत ने अपने ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्न को जम्बू द्वीप का राजा बनाया था। आग्नीध्न के नौ पुत्र हुए। इन नौ पुत्रों का

नाम निम्न है – नाभि, किंपुरुष, हरि, इलावृत, रम्य, हिरण्य, कुरु, भद्र और केतुमाल। आग्नीघ्न के नौ पुत्रों के नामानुसार जम्बूद्वीप का नौ वर्षों में विभाजन हुआ। इन विभाजनों का विस्तृत विवरण निम्न है – नाभिवर्ष आदि।

१. भारतवर्ष : आग्नीघ्न के नौ पुत्रों में प्रथम पुत्र नाभि हुए। नाभि के पुत्र ऋषभ, ऋषभ के पुत्र भरत एवं भरत के पुत्र सुमति हुए। ऋषभ के पुत्र भरत के नाम से ही भारत का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार जम्बू द्वीप के दक्षिण हिम नाम का वर्ष भरत को मिला, जो कालान्तर में उनके नाम से भारत कहलाया। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि नाभि के पौत्र और ऋषभ के पुत्र भरत से ही भारत का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। दुष्यन्त पुत्र भरत के नाम से भारत का नाम नहीं पड़ा।[२०]

२. किंपुरुषवर्ष ३. हरिवर्ष ४. इलावृतवर्ष ५. रम्यवर्ष ६. हिरण्यवर्ष ७. कुरुवर्ष ८. भद्राश्ववर्ष ९. केतुमाल वर्ष।

भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष नौ भागों में विभक्त था – १. इन्द्रद्वीप २. कशेरुमान ३. ताम्रवर्ण ४. गभस्तिमान ५. नागद्वीप ६. सौम्य ७. गान्धर्व ८. वारुण ९. भारत

इन्द्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा।।
अयं तु नवमस्तेषां...।[२१]

भारतवर्ष का कार्मुक संस्थान (प्राचीन विभाजन) : मार्कण्डेय पुराण में भारतवर्ष का भौगोलिक विभाजन का विवरण दो प्रकार से प्राप्त होता है। प्रथम तो कार्मुक (धनुषाकार) अर्थात् भारत की आकृति धनुष के आकार की है। द्वितीय कूर्म अर्थात् कच्छप आकृति, जिसमें कूर्म के प्रत्येक अंगों के आधार पर जनपदों का विभाजन किया गया है।

दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः।
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथागुणः।।[२२]

कूर्म आकृति भौगोलिक सृष्टि : कूर्म का अर्थ कच्छप होता है। मार्कण्डेय पुराण में भारतवर्ष का द्वितीय भौगोलिक सृष्टि वर्णन कूर्म के प्रत्येक अंगों के आधार पर किया गया है। सृष्टि के दूसरे स्वरूप में भगवान हरि कूर्म रूप धारण कर नव भागों में वास करते हैं। नक्षत्र और सम्पूर्ण विषय भी नव भागों में विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करते हैं – नवधा संस्थिते न्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः। भगवान कूर्म के नव भाग हैं – १. मध्य भाग २. कूर्म का मुख ३. कूर्म का पूर्व-दक्षिण पैर ४. दक्षिण कुक्षि ५. पश्चिम दक्षिणी पैर ६. पुच्छ या पृष्ठ भाग ७. पश्चिमोत्तर पैर ८. उत्तर कुक्षि ९. पूर्वोतरी पैर। इस कूर्म स्वरूपभारत का मुख पूर्व की ओर है और इसी दिक् सूत्र को पकड़कर अन्य अवयवों की आपेक्षित स्थिति निश्चित की जा सकती है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** तैत्तरीय उपनिषद ३/१ **२.** भागवत पुराण-३/१०/१३ **३.** शिवपुराण बायवीय,१/१२/१८ **४.** मार्कण्डेय पुराण ४४/३१ **५.** मार्कण्डेय पुराण ४४/३१ **६.** मार्कण्डेय पुराण ४४/३२ **७.** मार्कण्डेय पुराण ४४/१७ **८.** मार्कण्डेयपुराण ४४/२३ **९.** मार्कण्डेय पुराण ४४/२७ **१०.** विष्णु, १/५/१५-१८ **११.** मार्कण्डेय पुराण ४४/३४ **१२.** सांख्यकारिका, कारिका ४६ **१३.** मार्कण्डेय पुराण, ४७/२८, वायुपुराण, ६/५७ **१४.** मार्कण्डेयपुराण ४४/३५ **१५.** भागवत पुराण १/३/६ **१६.** मार्कण्डेय पुराण ४४/३७ **१७.** मार्कण्डेय पुराण ४४/३६ **१८.** विष्णु १/७/११-१५, मार्कण्डेय, ५२/२-१० **१९.** पुराण विमर्श पृष्ठ ३० **२०.** मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ १३८ **२१.** मार्कण्डेय पुराण - ५४/६-७ **२२.** मार्कण्डेय पुराण ५४/५९

कविता

अखण्ड जोत

सदाराम सिन्हा, 'स्नेही'

जगमग-जगमग अखण्ड जोत जले, जगन्नाथ के दरबार में।
जैसे चाँद-चाँदनी ज्योतित करे, जगन्नाथ के दरबार में ।।
प्रेम श्रद्धा आस्था भक्ति से, अन्तस् निर्मल पावन होगा ।
सत्य संकल्प साधना से, जीवन सतपथ गतिमान होगा ।।
सत्संग सद्भाव सेवा से, भक्त आनन्दित संसार में ।।१।।
धर्म कर्म स्नेहित जोत से, जग में नव जागरण आयेगा ।
ज्ञान ध्यान विज्ञान आलोक, सबको चमत्कृत कर जाएगा ।।
सत्य सनातन फहरेगा, एकता समता सहकार में ।।२।।
आँधी आये तूफान आये, कामना दीप जलती जाये ।
विपदा आये संकट छाये, जीवन जोत बुझा ना पावे ।।
गौरव गरिमा बढ़ती जो, सुमत सौजन्य संस्कार में ।।३।।
कामना के दीप का प्रकाश, लक्ष्य पथ करेगा उजियारा ।
काम क्रोध लोभ दूर होंगे, भाग्य का चमकेगा सितारा ।।
त्रिदेव आशीष बरसा से, 'सदा' भक्तों के मनुहार में ।।४।।

भजन एवं कविता

श्रीहनुमन्त पंचक

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

जय हनुमन्त जाम्बन्त-सखा रामदूत,
अंजनी के लाल प्रभु केशरी किशोर जी।
दशमुख-सुत प्राण-हरण जरण-लंक,
सिय सुख-करण पवनसुत घोर जी ।।

बालकाल भक्षि जब लियो दिनपति को तो,
त्राहि-त्राहि तिहुँ लोक करत पुकार जी ।
देव-मुनि विनती करत हाथ जोरि तब,
छाड़ि दियो कृपा करि रवि को उबार जी ।।

तेरे बल रामचन्द्र रावण सों कियो रण,
सिन्धु पार जाई बाँधि बानर के दल जी ।
तेरे बल पायो प्राण लखन हे महावीर,
लायो गिरि द्रोण ही गँवाये बिनु पल जी ।।

नागपाश बाँधि जब लियो राम-लखन को,
बन्धन छुड़ायो प्रभु गरुड़ बुलाय जी।
लै गयो पाताल-लोक बाँधि अहिरावण तो,
बेगि तुम लायो दोउ भाई को छुड़ाय जी ।।

पावत न पार शेष-शारदा बखान करि,
महिमा महान तेरो अपरम्पार जी।
रघुपति करत बड़ाई तेरो बार-बार,
पद में नावत माथ अनिलकुमार जी ।।

दुरित-निवारिणि काली अम्बा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

दुरित-निवारिणि काली अम्बा, तुम ही इस जग की आधार।
तेरी कृपा सहज पाकर माँ, हो जाता भवभय से पार ।।
इस दुष्कर संसार-विपिन में, मन भरमाता है बहु बार ।
तुम ही आकर राह बताती, देती सदा स्वस्थ सुविचार ।।
तुम्हें भूलकर यदि रहता हूँ, पाता हूँ भवकष्ट अपार ।
दुख मेरा मिटता है माता, जब तुम हरती विषय-विकार ।।
मेरा पाप-गरल लेकर माँ, देती तुम अमृत की धार ।।
कृपामयी माँ तव चरणों में, करूँ प्रणति मैं बारम्बार ।।

बस यही मेरी है विनती

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

बस यही मेरी है विनती ।
अब तुम ही निभाओ, अपनी रीति ।।
जब सर्वस्व अपना कर दिया तुझको समर्पण।
हो गया निर्भय, निःशंक, मैं उसी क्षण ।।
नाव भवसागर में मेरी, डूब जाये या उतराये ।
क्यों करूँ चिन्ता प्रभु, जब तू ही नाविक और सहाय ।।
बस तुम्हारे पाद-पद्मों में रहे नित्य भक्ति ।
अब तुम ही निभाओ, अपनी रीति ।।

न मैं जपी, न मैं तपी, न सन्त, न साधक ।
सब गुणहीन, मलिन, दीन, बस प्रेम आराधक ।।
जो भी हूँ, जैसा भी हूँ, बस पुत्र तो तेरा ही हूँ।
लाखों की भीड़ में भी, एक अकेला ही हूँ ।।
हे भक्तवत्सल, सर्वस्व मेरे, तुम ही मेरी शक्ति।
अब तुम ही निभाओ, अपनी रीति ।।

महर्षि वाल्मीकि तथा उनकी रामायण पर वेदों का प्रभाव

डॉ. के. डी. शर्मा

सेवानिवृत्त प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, बीकानेर

पुराणों के अनुसार महर्षि वाल्मीकि प्रचेता के पुत्र थे और प्रचेता ब्रह्माजी के पुत्र थे। बचपन में वाल्मीकि का एक भीलनी ने अपहरण कर लिया था, जिससे उनका पालन-पोषण भील जाति में हुआ तथा वे भीलों की परम्परा अपनाते हुए आजीविका के लिए रत्नाकर डाकू बन गये। वे पथिकों को लूटते थे और आवश्यकता पड़ने पर मार भी देते थे। इस पाप में इनके परिवार के किसी भी सदस्य ने भागीदार होना स्वीकार नहीं किया, तब देवर्षि नारद मुनि ने इनको राम-राम जपने का परामर्श दिया, परन्तु इनके मुख से मरा-मरा ही उच्चरित होता था। इन्होंने कठोर साधना-तपस्या की। इनका शरीर क्षीण हो गया तथा इनके शरीर में चीटियाँ लग गईं, जिसके कारण इनका नाम वाल्मीकि हो गया। इनकी कठोर साधना-तपस्या से ब्रह्मदेव प्रसन्न हो गये और इन्हें रामायण लिखने की सामर्थ्य प्रदान की।

एक बार महर्षि गंगा के किनारे साधना-तपस्या के लिये गये थे। उस समय उन्होंने पास में प्रेम में रत पक्षी नर-नारी का जोड़ा देखा। उसी समय एक शिकारी ने तीर मारकर नर-पक्षी की हत्या कर दी। उस दृश्य को देखकर उनका हृदय दुखित हो गया, उनके मुख से स्वत: पहली बार एक श्लोक निकल पड़ा, जिसका भाव यह था – ''जिस किसी दुष्ट ने यह घृणित व्यर्थ कार्य किया है, उसे कभी भी सुख नहीं मिलेगा तथा उसे पत्नी का वियोग रहेगा।'' (वा. रा. १/२/१५)

ब्रह्माजी की कृपा से महर्षि वाल्मीकि ने लोककल्याण के लिये वाल्मीकि-रामायण की रचना की। इस रचना के सम्बन्ध में स्वयं महर्षि वाल्मीकि कहते हैं – ''वेदों के समान पवित्र, पापनाशक तथा पुण्यमय इस ग्रन्थ को जो कोई पढ़ेगा, वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा।''

प्राय: सभी व्याख्याकारों ने वाल्मीकि रामायण के सम्बन्ध में एक श्लोक लिखा है, जिसका भाव इस प्रकार है – ''वाल्मीकि रामायण विशुद्ध वेदार्थ रूप में लोककल्याण के लिए महर्षि वाल्मीकि के मुख से प्रकट हुई है।'' वेदों का अर्थ गूढ़ है तथा वाल्मीकि रामायण के भाव अत्यन्त सरल हैं। अत: वाल्मीकि रामायण द्वारा ही वेदार्थ जाना जा सकता है।

भगवान श्रीराम अपने तीनों भाइयों के साथ महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जाकर वेदाध्ययन करते हैं। राजर्षि जनक के गुरु और पुरोहित गौतम तथा शतानन्द आदि सब वेदों में निष्णात थे, जिसमें याज्ञवल्क्य का प्रथम स्थान था, यही नहीं स्वयं रावण वेदों का बड़ा भारी प्रकाण्ड विद्वान था। उसके भाष्यों का प्रभाव सायण, वेंकट तथा माधव आदि के भाष्यों पर प्रत्यक्ष दिखता है। रावण के यहाँ अनेक वेदपाठी विद्वान ब्राह्मण थे। हनुमानजी जब सीता को ढूँढ़ते हुए लंका पहुँचे तथा अशोक वाटिका में पेड़ पर छिपकर बैठे, तब आधी रात के बाद उन्हें लंकानिवासी वेदपाठी विद्वानों की यज्ञों द्वारा यजन करनेवाले ब्रह्मराक्षसों के घरों में वेदपाठ की ध्वनि सुनायी दी। उसे हनुमानजी ने सुना। हनुमानजी स्वयं भी वेदों के प्रकाण्ड विदान थे। वनवास काल में किष्किन्धा में जब हनुमानजी भगवान श्रीराम से बातें करते हैं, तब श्रीराम लक्ष्मणजी को कहते हैं – ''लक्ष्मण ! हनुमानजी हर बात के मर्म को समझते हैं। जिसको वेदों का ज्ञान नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही हनुमानजी ने व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है। सम्भाषण में इनके मुख से कोई अशुद्धि नहीं निकली।''

हनुमानजी जब लंका जाते हैं और रावण से बातचीत करते हैं, तब वेदों के सारभूत ज्ञान का निरूपण करते हैं। वे रावण से कहते हैं – ''भगवान श्रीराम समस्त चराचर प्राणियों तथा सम्पूर्ण लोकों का संहार करके, फिर उनका नये सिरे से निर्माण करने की शक्ति रखते हैं। तुमने सीता-हरण का जो महापाप किया है, उसका फल शीघ्र तुम्हें भोगना पड़ेगा। भगवान शंकर, ब्रह्माजी तथा अन्य कोई भी शक्ति तुम्हारी सहायता नहीं कर पायेगी। तुम वेदज्ञ हो और जो धर्म तुमने किया, उसका फल तुम्हें मिल चुका है। अब तुम धर्म-विरुद्ध आचरण कर रहे हो, अत: सावधान हो जाओ।''

विभीषण भी वेदों के ज्ञाता थे। वे वेद-तत्त्व को जानते थे। उन्होंने रावण को समझाया, परन्तु रावण ने विभीषण की बात नहीं सुनी। वेदतत्त्व को जानने से वे भगवान् श्रीराम को पहचान सके।

श्रीराम के प्रकट होने के समय महर्षि वसिष्ठ ने महाराज दशरथ को कहा कि श्रीराम भगवान विष्णु के अवतार हैं

और साक्षात् भगवान हैं तथा अपनी लेश मात्र शक्ति से समस्त संसार को प्रकाशित कर सकते हैं। अयोध्या में वेदज्ञ ब्राह्मणों का बाहुल्य था। जब भरत श्रीराम को वापस लाने चित्रकूट जाते हैं, तब अनेक वेदपाठी शिक्षक-छात्र वेदपाठ करते हुए भरत के साथ जाते हैं।

वनवास काल में श्रीराम महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जाते हैं। महर्षि अगस्त्य ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त (मंत्रों के संग्रह को सूक्त कहते हैं) संख्या १६५ से संख्या १९१ के मन्त्र-द्रष्टा थे। प्रथम मण्डल के ये सूक्त ऋग्वेद में आगस्त्य-मण्डल बहुत प्रसिद्ध हैं। महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा भी कई सूक्तों की मन्त्रद्रष्टा थी। महर्षि अगस्त्य महाराज दशरथ के राजगुरु थे। देवताओं के अनुरोध पर काशी छोड़कर वे दक्षिण में चले गये तथा वहीं स्थायी रूप से रहे। महर्षि अगस्त्य महर्षि वसिष्ठ के बड़े भाई थे तथा उनका जन्म काशी में हुआ था, अब उस स्थान को अगस्त्यकुंड कहते हैं। महर्षि अगस्त्य वैदिक ऋषि थे। महर्षि अगस्त्य तथा इनकी पत्नी दोनों का सप्तऋषि मण्डल में स्थान है। इनके पुत्र तथा पौत्र भी ऋग्वेद के नवम मण्डल के २५वें तथा २६वें सूक्त के मन्त्रद्रष्टा थे।

महर्षि वाल्मीकि ने ही प्रथम बार संस्कृत में श्लोकों की रचना की तथा ब्रह्माजी की कृपा से संस्कृत में महाकाव्य की रचना की, जो वाल्मीकि रामायण नाम से प्रसिद्ध है। वाल्मीकि ने प्रथम बार महाकाव्य रामायण की रचना की, अत: वे आदि कवि हैं। रामायण में श्रीराम के चरित्र के माध्यम से जीवन के सत्य व कर्तव्य की हमें प्रेरणा मिलती है। श्रीराम ने अयोध्या के राजपाट का मोह छोड़कर पिताश्री की आज्ञा मानकर चौदह वर्ष के लिये वनवास जाना सहर्ष स्वीकार कर समाज के लिये आदर्श प्रस्तुत किया।

समस्त प्राणियों के विषय, इन्द्रियाँ तथा उनके स्वामी देवता सब चैतन्य हैं, किन्तु सबको प्रकाशित करनेवाली शक्ति ही है, जो वेदसार श्रीराम के नाम से विज्ञेय है।

भगवान श्रीराम ने रावण को देखकर कहा था कि रावण वेदों का ज्ञाता, तेजस्वी है, किन्तु वेदविरुद्ध आचरण होने से इसका पतन होगा। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में श्रीराम के भाव इस प्रकार व्यक्त किये हैं –

यद्यधर्मो न बलवान स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशवनस्यापि रक्षिता।।

(वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड)

वाल्मीकि रामायण की समाप्ति के समय प्रार्थनारूप में कहा गया है – ''सम्पूर्ण वेदों के पाठ करने का जितना फल मिलता है, उतना ही फल वाल्मीकि रामायण का पाठ करने से मिलता है तथा इसके पाठ करने से देवताओं की शक्तियाँ भी बढ़ जाती हैं और पृथ्वी पर ठीक से वर्षा होती है एवं राजाओं का शासन निर्विघ्न चलता है। सम्पूर्ण विश्व में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। संक्षेप में यह कहा गया है कि रामायण पढ़े बिना वेद का अर्थ तथा भाव ठीक तरह से समझ में नहीं आ सकते।

जब महर्षि वाल्मीकि के मुख से पहली बार श्लोक निकला, तब ब्रह्माजी ने इनसे कहा – ''ब्रह्मन ! अब तुम्हारे मुख से निकला हुआ छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप में ही होगा। अत: तुम मेरी सामर्थ्य से भगवान श्रीराम के परम पावन चरित्र का विस्तार से वर्णन करते हुए रामायण की श्लोक रूप में रचना करो।'' ब्रह्माजी ने पुन: कहा – ''जब तक पृथ्वी, पर्वत, समुद्र रहेंगे, तब तक तुम्हारी रामायण रहेगी और इसके आधार पर अनेक रामायणों की रचना होगी तथा तीनों लोकों में तुम्हारी अबाध गति होगी एवं इतिहास, पुराण आदि की आधार होगी।''

कहा जाता है कि सभी ब्राह्मण बालकों को सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि के मुख से प्रथम बार निकला हुआ यही श्लोक पढ़ाया जाता है, जो इस प्रकार है –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

(वाल्मीकि रामायण, १/२/१५)

इस श्लोक का एक अर्थ इस लेख के प्रथम पृष्ठ के द्वितीय परिच्छेद में दिया गया है, परन्तु अनेक कवियों ने इस श्लोक के सैकड़ों अर्थ किये हैं। राजा भोज ने इसी श्लोक के आधार पर चम्पू रामायण का निर्माण किया।

वाल्मीकि रामायण वैदिक साहित्य से भिन्न सम्पूर्ण विश्व का लौकिक साहित्य का प्रथम महाकाव्य है। सारे संसार के ग्रन्थ इसी से प्रकाशित होते हैं। संसार के प्रथम कवि वाल्मीकि ही हुए हैं।

कठोर साधना और तपस्या से रत्नाकर डाकू से आदिकवि महर्षि वाल्मीकि संसार में विख्यात हो गये। कहते हैं कि उन्होंने श्रीराम के महाराज दशरथ के महल में प्रकट होने से पूर्व ही रामायण की रचना की, जिसमें श्रीराम तथा अन्य पात्रों का संसार के लिए आदर्श प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण पर वेदों का स्पष्ट प्रभाव है। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (५९)

(द्वादश अध्याय १२/७)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

किमत्र वै त्वया लब्धं मृते वा जीविते गजे।
किञ्च यद्द्वादशैर्वर्षैस्त्वमुग्रतपसाप्तवान्।।८१।।
नद्याः पारंगमस्तत्तु साध्यते मुद्रयैकया।
अतो नष्टो वृथा कालः भ्रातस्त्वया हि केवलम्।।८२।।

– हाथी मरा या जीवित हो गया, इससे तुमको क्या मिला? तुमने बारह वर्ष की तपस्या से जो नदी पार करना सीखा है, वह तो हमलोग एक पैसे में कर लेते हैं। अतः भाई! तुमने तो व्यर्थ ही समय नष्ट किया है।''

श्लेषपूर्ण वचः श्रुत्वा तेषामेवंविधं ततः।
आसीद्द्राग् लब्धचेताः स मनसा चेत्यचिन्तयत्।।८३।।

– भाइयों से इस प्रकार की व्यंग्यात्मक बातें सुनकर उसकी चेतना जग गयी। तब वह सोचने लगा –

सत्यमेव मया लब्धं मन्त्रशक्त्या किमेतया।
इत्थं विचिन्त्य सद्यः स भगवद्दर्शनाय वै।
घोरतरं तपस्तप्तं पुनर्देशान्तरं ययौ।।८४।।

– सचमुच इस मन्त्रशक्ति से मुझे क्या मिला, ऐसा सोचकर वह भगवान के दर्शन हेतु पुनः घोरतर तपस्या करने के लिए अन्य स्थान पर चला गया।

आत्मानं नैव मन्येत चतुरमधिकं कदा।
चतुरं मन्यमानः स्वं विष्ठाभुग् वायसो यथा।।८५।।

– अपने को अधिक चतुर, चालाक नहीं मानना चाहिए। जैसे कौआ अपने को चालाक मानता है, लेकिन विष्ठा खाता है।

संसारक्षेत्र एवास्मिन् सदैव दृश्यते तथा।
चातुरीगुणवृत्तिस्था विप्रलब्धा हि केवलम्।।८६।।

– वैसे ही सर्वदा देखा जाता है कि इस संसार-क्षेत्र में भी जो अधिक चालाकी करते हैं, वे लोग ही वंचित रहते हैं।

मया दण्डायमानेन गंगायास्तट एकदा।
हस्ते रुप्यकमेकस्मिन्नन्यस्मिन् मृत्तिकां तथा।।८७।।
परिगृह्योभयं भूयो मनसैवं विचारितम्।
रुप्यकं मृत्तिकैवेति मृत्तिका रुप्यकं ततः।।८८।।
पश्चाद्विचारणादेवं गंगायामक्षिपं द्वयम्।
तदाहं मनसा किञ्चिद्भीतश्च भावितोऽभवम्।।८९।।

– एक दिन गंगा-तट पर खड़ा होकर मैं एक हाथ में रुपया और एक हाथ में मिट्टी लेकर मन ही मन यह सोचकर कि मिट्टी ही रुपया है और रुपया ही मिट्टी है, दोनों को गंगा में फेंक दिया। उसके बाद मेरे मन में भय हुआ और सोचने लगा।

लक्ष्मीश्चेत् कुपिता माता तयान्नं च न दीयते।
किं करोमीति भीतः सन्नहमेवमचिन्तयम्।।९०।।

– भयभीत होकर मैं सोचा – माँ लक्ष्मी यदि कुपित होकर भोजन न दें, तब क्या करूँगा?

मनसैवं ततश्चाहं लक्ष्मीं प्रार्थितवानिदम्।
नाहं याचे तवैश्वर्यं मातस्त्वं वस मे हृदि।।९१।।

– तत्पश्चात् मैंने मन से माँ लक्ष्मी से प्रार्थना किया – हे माँ लक्ष्मी ! तुम मेरे हृदय में निवास करो। मुझे तुम्हारा ऐश्वर्य नहीं चाहिए।

अज्ञानां कर्म सन्दृश्य द्विकृत्वो हसतीश्वरः।
प्रथमं स्मयते चासौ रज्जूनां भ्रातरो यदा।।९२।।
ममैव भूमिखण्डोऽयं प्रान्तोऽसौ तवेति च।
वीक्ष्य विवदमानौ तौ भूमेर्विभाजने रतौ।।९३।।

– अज्ञानियों के कार्य को देखकर भगवान दो बार हँसते हैं, जब भाई-भाई रस्सी से जमीन बाँटते हुये कहते हैं – यह मेरा है और यह तेरा है। उन लोगों के इस वार्तालाप को सुनकर ईश्वर एक बार हँसते हैं। **(क्रमशः)**

ऑपरेशन सिन्दूर का कम उम्र का योद्धा

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, प्रधानमंत्री राष्ट्रीय बाल पुरस्कार २०२६ का विजेता श्रवण सिंह राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू द्वारा वीरता, साहस और सेवा के लिये सम्मानित किया गया। आज हम इसी श्रवण सिंह के विषय में जानेंगे।

श्रवण सिंह की उम्र १० वर्ष है, जो पंजाब के फिरोजपुर से है, जो छोटी-सी उम्र में ही प्रसिद्ध हो गया। आपको याद होगा कि पहलगाँव में आतंकी हमले से युद्ध की आंशका के बाद भारत-पाकिस्तान सीमा पर बसे अनेक गाँवों में हलचल तेज हो गई थी। दोनों देशों में तनाव हो गया था। पंजाब के फिरोजपुर के करीब एक ऐसा ही गाँव है तारावली, जिसने अपनी आँखों के सामने ऑपरेशन सिन्दूर को आकार लेते देखा। हाल के सालों में गाँव के खुले मैदानों में सबसे बड़ी सेना की तैनाती हुई थी। जंग के मंडराते बादलों के बीच भारतीय सेना के अदम्य साहस के साथ एक छोटे से बच्चे का अडिग हौसला भी इस सैन्य अभ्यास का हिस्सा बन रहा था। सीमा से सटे क्षेत्रों में रहनेवाले किसान सोना सिंह... के बेटे श्रवण सिंह के पास न वर्दी थी, न हथियार ,लेकिन ऐसी दयनीय स्थिति में वह देश की सेवा से चूकना नहीं चाहता था। ऐसे में अपने छोटे-छोटे हाथों से वह जो भी कर सकता था, उसके लिए उसने कमर कस ली थी। सैनिकों की तरह वह बंदूक नहीं चला सकता था, तो क्या हुआ? देश के लिये बंदूक उठाने वाले सैनिकों की सेवा तो वह कर ही सकता था। यही सोचकर श्रवण सिंह ने अपने खेतों में तैनात जवानों की हर वह मदद की जो वह कर सकता था। वह घर से सैनिकों के लिये ठण्डा पानी लेकर आता, तपते खेतों में तैनात सेनाओं के लिये हर रोज वह दूध, लस्सी और बर्फ लेकर आता। भीषण गर्मी में तैनात सैनिकों के लिये यह सब किसी वरदान से कम नहीं था। एक तरफ युद्ध के डर से सारा गाँव सहमा हुआ था, वहीं दूसरी ओर १० साल का श्रवण सिंह रोज दौड़कर सैनिकों के पास जाता और उन्हें यह विश्वास दिलाता कि वे अकेले नहीं हैं।

एक साक्षात्कार में पूछे जाने पर श्रवण सिंह ने भविष्य में फौजी बनने की इच्छा जताई है। हमारी सेना ने भी श्रवण सिंह के समर्पण का संज्ञान लिया है। उसके प्रति कृतज्ञता जताते हुए २७ मई, २०२५ को उसे सम्मानित किया गया। सेना के ऑफिसर कमांडिंग मेजर जनरल रंजित सिंह मनराल ने एक समारोह में श्रवण सिंह को सम्मानित किया। उसे एक खास उपहार और पसंदीदा भोजन दिया गया। श्रवण सेना की ओर से मिले सम्मान और उपहार से बहुत खुश है। और वह बड़े होकर फौज में जाने की इच्छा रखता है। श्रवण के पिता अपने बेटे के अंदर उमड़ रही देशभक्ति का पोषण कर रहे हैं, जब खेत में तैनात सैनिकों के लिये वह दूध, लस्सी और बर्फ लेकर जाता था, तब वे भी उसे ऐसा करने से नहीं रोकते थे। ऑपरेशन सिन्दूर में श्रवण सिंह के इस प्रयास को देखते हुए सेना ने उसे सबसे छोटा नागरिक योद्धा घोषित किया है।

बच्चे हमेशा यह सोचते हैं कि अभी हम छोटे हैं, बड़े होकर कोई सेवा का काम करेंगे, अभी हम बड़ों पर आश्रित हैं। पर ऐसा नहीं है, सेवा करने की कोई उम्र नहीं होती। बस मन में उत्साह, अनुभूति, उमंग तथा कुछ करने की इच्छा होनी चाहिए। जैसे हम श्रीमाँ सारदा देवी के जीवन को देखें, तो वे बचपन से ही सेवा का कार्य करती रही हैं। रामकृष्ण परमहंस देव भी कहते हैं, ''ईश्वरी बुद्धि से जीव सेवा करनी चाहिए।'' ''शिव ज्ञान से जीव-सेवा।'' स्वामी विवेकानन्द जी भी सेवा की प्रमुखता देते हुए कहते हैं, Service to men is service to God. तो बच्चो, अपने को छोटा न समझकर जो भी सेवा का कार्य हो सके, उसे अवश्य करें।'' ○○○

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो ऋषियों के अद्वैत ज्ञान का, भक्तिपरक आचार करैं ।
जो जगप्रपंच में उसी ज्ञान से, भक्ति-साधनाचार करैं ।
जो वेदान्तिक अद्वैत ज्ञान का, सेवामय व्यवहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।६१।।
जो मनुज देह में माँ काली-संग, बालक सदृश निवास करैं ।
जो जगज्जननि सन्तानों की सेवा, सत्कार सहास करैं ।
जो विश्ववन्द्य वैरागी, परदुखकातर जग-उपकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।६२।।
जो सायं-प्रातः ईश्वर का, गुण-कीर्तन विविध प्रकार करैं ।
जो मातृ-स्नेह से भक्ति-ज्ञान-कर्मठता का संचार करैं ।
जो जीवन में वेदान्त-रसायन, का उदार संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।६३।।
जो विविध पथों के भक्त साधकों, को साधन-निर्देश करैं ।
जो मातृसुलभ-अपनत्व-भाव से, निर्भय हृदयप्रदेश करैं ।
जो अनासक्त सेवा का पावन, शुभादर्श स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।६४।।
जो धन-सम्मान-देहसुख के प्रति, उदासीन व्यवहार करैं ।
जो मातृप्रेम के विमल भाव को, प्रकटित विविध प्रकार करैं ।
जो हृदय प्रेम को सर्वोपरि रख, समुचित तर्क-विचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।६५।।
जो ईश-भक्ति से जाति-पाँति के, भेदभाव का नाश करैं ।
जो सेवा-निष्ठा-भक्ति और, ममता से भव-भय-नाश करैं ।
जो आध्यात्मिक जागृति के द्वारा, सकल जगत-उपकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।६६।।
जो नरेन्द्रादि शिष्यों को पावन, गैरिक वस्त्र प्रदान करैं ।
जो लज्जापटावृता रहकर भी, विमल दृष्टि का दान करैं ।
जो श्रीगुरुवर-निर्दिष्ट भाव का, शुभादर्श तैयार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।६७।।
जो युवक नरेन्द्रनाथ के भीतर, दिव्य शक्ति-संचार करैं ।
जो ग्राम्य नारि होकर भी, जग-जननी समान आचार करैं ।
जो दिव्य चेतना द्वारा उन्नत, जीवन-पथ तैयार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।६८।।
जो दैहिक रोगयंत्रणा में भी, दिव्यानन्द-विहार करैं ।
जो जगप्रपंच-दुखमोचन की, साधना विशेष प्रकार करैं ।
जो अथक देह-मन की कर्मठता, द्वारा जग-उपकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।६९।।
जो माँ गंगा को ब्रह्मवारि, कहकर आदर-सम्मान करैं ।
जो बड़े भोर में बकुलतला के, घाट नित्य-स्नान करैं ।
जो बेलुड़ मठ में रहकर गंगा-तट-प्रियता साकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७०।।
जो मथुरनाथ के आग्रह पर, पूजक-पद को स्वीकार करैं ।
जो नौबतघर के तंग कक्ष, से ही मातृत्व-प्रसार करैं ।
जो निस्संकोच भाव से गुरु से, प्रश्न अनेक प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७१।।
जो सरल ग्राम्य उपमा-रूपक से, उपदेशामृत-दान करैं ।
जो पाप-ताप-संतप्त चित्त को, आश्रय दिव्य-प्रदान करैं ।
जो यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रखर, प्रतिभा से तर्क-विचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७२।।
जो भावमग्न हो रसिक भृत्य को, अभय-वचन का दान करैं ।
जो शरणागत सन्तानों को शुभ, दीक्षामंत्र प्रदान करैं ।
जो परिव्राजक खेतड़ी-राजदरबार को धन्य अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७३।।
जो धनी लुहारिन से भिक्षा लेकर, निज-प्रण साकार करैं ।
जो रामकृष्ण-शुभभावरंजिताकारा, सब व्यवहार करैं ।।
जो गुरु-आज्ञा से त्यागी शिष्यों, का नेतृत्व उदार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७४।।
जो रामकृष्ण निज वधू-वरण, भावस्थ-वचन अनुसार करैं ।
जो बालसुलभ अंगुलि-निर्देशन, से पति-वरण उदार करैं ।
जो नित्यसिद्ध आचार्य त्यागव्रत, से जग का उपकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी. हृदय सदैव विहार करैं ।७५।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

पन्द्रहवाँ अध्याय (१५/३)

स्वामी आत्मानन्द

नेति नेति के द्वारा अतीन्द्रिय अव्यय पद की व्याख्या

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।६।।

यत् गत्वा न निवर्तन्ते (जिस पद को प्राप्त होकर लौटकर आना नहीं होता) न सूर्यः भासयते न शशांकः न पावकः (वह सूर्य की आभा से चमकता नहीं, न चन्द्रमा न अग्नि ही से) तत् मम परमं धाम (वही मेरा परमधाम है)।

''जिस पद को प्राप्त होकर लौटकर आना नहीं होता, वह सूर्य की आभा से चमकता नहीं, न चन्द्रमा, न अग्नि ही से प्रकाशित होता है, वही मेरा परमधाम है।''

उस पद का वर्णन केवल नेति-नेति के सहारे ही किया जा सकता है। जहाँ पर मन जाता नहीं, जहाँ वाणी की पहुँच नहीं है। जो मन और वाणी की सीमा से परे है, जो इन्द्रियों की सीमा से परे है, उस लक्ष्य को कैसे समझाया जाए? भगवान बताते हैं – वह लक्ष्य जो परमपद कहलाता है, वह सूर्य की आभा से चमकता नहीं, सूर्य उसको प्रकाशित नहीं कर पाता है, न चन्द्रमा उसको प्रकाशित कर पाता है और न अग्नि ही उसे प्रकाशित कर पाती है। जहाँ पर पहुँचकर वापस न आए, ऐसा वह मेरा परमधाम है। संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सूर्य के द्वारा उद्भासित होती हैं और सूर्य के प्रकाश में उन्हें हम देखने में समर्थ होते हैं। सूर्य के अस्त हो जाने पर वहीं वस्तुएँ हमें चन्द्रमा के प्रकाश में दिखाई देती हैं। जब ये दोनों ही नहीं रहते हैं, तब हम उन वस्तुओं को अग्नि के सहारे देखना चाहते हैं। पर जब हम गहरी नींद में सोए रहते हैं, तब वहाँ न तो सूर्य रहता है, न चन्द्रमा रहता है और न अग्नि ही, वहाँ पर भी तो उद्भास है। ऐसा तो है नहीं कि उस समय मनुष्य मृत होकर पड़ा रहता है। नींद से उठकर जब कोई यह कहता है, 'मैं आज बहुत सुख की नींद सोया', तो उस 'बहुत सुख' का अनुभव करनेवाला कौन है? वही आत्मा की ज्योति है। इसीलिए कहा गया कि उस अवस्था को सूर्य, चन्द्र, अग्नि कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकते। सूर्य नेत्रों का देवता है। आँखें सूर्य की शक्ति से देखती हैं। चन्द्रमा मन का देवता है। उसी की शक्ति से मन वस्तुओं को विचार की परिधि में लाता है। अग्नि वाणी का देवता है। वाणी शब्दों के माध्यम से किसी वस्तु को प्रकट करती है, तो उसके पीछे अग्नि की शक्ति है।

अब यह आत्मतत्त्व जो परमधाम है, जिसको भगवान ने अव्यय पद कहकर पुकारा, वहाँ न नेत्र पहुँचते हैं, न मन पहुँचता है और न वाणी पहुँचती है। यह आत्मा नेत्रों की परिधि में नहीं आती। जिसे परमलक्ष्य कहा, परम अव्यय पद कहा, वह कोई रूपवान व्यक्ति नहीं है, जिसे नेत्रों से देख लें। या फिर ऐसा कोई धाम नहीं कि जहाँ हम पहुँच जाएँ। वृन्दावनधाम या जगन्नाथधाम ऐसे हैं, जिनके दर्शन नेत्रों से कर सकते हैं। सूर्य के भासक तत्त्व का वहाँ पर प्रभाव नहीं है। अच्छा! यदि वह रूपवान नहीं अरूपवान है, आकारवाला नहीं, निराकार है, तो क्या मन से उसका चिन्तन नहीं किया जा सकता? तो कहते हैं – नहीं। मन से भी उसका चिन्तन नहीं किया जा सकता। वह मन से भी परे की वस्तु है। मन के देवता चन्द्रमा की पकड़ में भी वह नहीं आता। वह मननीय नहीं है, इसलिए मन के सहारे पकड़ में नहीं आता। वाणी के द्वारा बोलकर भी उसे बताया नहीं जा सकता। क्योंकि वह अग्नि का विषय ही नहीं है, जहाँ

जाकर कभी लौटना नहीं होता, वही भगवान का परम धाम है। जीवन में हमने साधना की। उस साधना के फलस्वरूप भगवत्कृपा से हमारा अन्तर उस परम ज्योतिमान की ज्योति से ज्योतित हो उठा। उसके आलोक से आलोकित हो गया। उस भास्वर से भास्वित हो उठा। कहते हैं – यद्गत्वा न निवर्तन्ते। एक बार इस प्रकार प्रकाशित हो उठने के बाद क्या कभी अन्धकार वहाँ प्रवेश कर सकता है? क्या हम फिर से नीचे आ सकते हैं? बिल्कुल नहीं। भगवान कहते हैं, 'अर्जुन! ऐसा जो धाम है, वही मेरा परमधाम है। प्रश्न उठता है, ऐसा जो परमतत्त्व है, उसे हम देख क्यों नहीं पाते? हमारे जीवन में वह आता क्यों नहीं? वह तत्त्व तो सदा हमारे भीतर विद्यमान है, पर उस तत्त्व को हम देख नहीं पाते, क्योंकि वह अपने आपको भिन्न-भिन्न उपाधियों से ढँक लेता है, आवृत्त कर लेता है। इसलिए जब हम उसे देखना चाहते हैं, तब उपाधि को देखते हैं। हम इस उपाधि को देनेवाले, उपाधि से भिन्न या उपाधि से ऊपर के तत्त्व को देख नहीं पाते। मान लीजिए एक दर्पण है जो गिरकर चूर-चूर हो गया और उसके सैकड़ों टुकड़े हो गए। ऊपर आकाश में सूरज चमक रहा है। सूरज के प्रतिबिम्ब आकर इन दर्पणों में पड़ते हैं। सूरज को तो हम नहीं देख पाते, पर दर्पण में उसके प्रतिबिम्ब को देख लेते हैं। दर्पण के जितने टुकड़े, उतने ही प्रतिबिम्ब। कोई छोटा बच्चा उन्हें देखेगा, तो कहेगा – 'कितने सारे सूरज धरती पर उतर आए हैं।' पर सूरज तो आकाश में एक ही है। वही भगवान बताते हैं कि दर्पण की उपाधि के कारण हम सच्चे सूर्य को नहीं देख पाते, केवल उसके प्रतिबिम्ब को देखते हैं। प्रतिबिम्ब में गति होती है। जहाँ-जहाँ उस दर्पण के टुकड़े को सरकाएँगे, वहीं-वहीं उसमें झलकनेवाला सूरज भी जाता दिखाई देगा। वस्तुत: सूरज नहीं चलता, वह तो काँच का टुकड़ा चला करता है।

इसी प्रकार यह जो अनन्तपद, भगवान का अव्ययधाम है, यह जो आत्मा है, वह हमको ठीक ढंग से दिखाई नहीं देता। भगवान कहते हैं, 'अर्जुन! वह तो मैं ही हूँ। मेरा वह परमधाम, वह आत्मस्वरूप तुम्हारे भीतर ही अवस्थित है, परन्तु तुम बिम्ब को नहीं देखते। तुम प्रतिबिम्ब को ही देखते हो। देह और मनरूपी दर्पण पर जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी को देखते हो। इसीलिए समझते हो कि देह चलती है, मन परिवर्तनशील है। इसीलिए तुम्हें वह प्रतिबिम्ब भी चलता हुआ-सा दिखाई देता है। तुम उसी को पकड़कर बैठ जाते हो। जो जीव है, उसीको तुम मान लेते हो कि वह ईश्वर है। असल में यह जीव मेरा प्रतिबिम्ब है। उस तत्त्व को देखने की कोशिश करो, तो पाओगे कि मैं सदा ही विद्यमान हूँ।'

अतिचेतन अवस्था में अज्ञान का समूल नाश

'उस परमधाम में पहुँचकर निवर्तन नहीं होता' यह जो भगवान ने बताया, उसका अर्थ यह हुआ कि संसार का जो ज्ञान है, यह सांसारिक जो विषय-वासना है, जो सांसारिक-बोध है, दु:ख और सुख की अनुभूति है, उस ज्ञान की अवस्था जब हो जाएगी, जीव जब परमधाम में पहुँच जाएगा, तब वह सांसारिक-बोध उसे कष्ट नहीं दे पाएगा। इसीलिए कहा कि एक बार उस परमधाम में पहुँचने पर वहाँ से निवर्तन नहीं होता। यह परमधाम कोई जगह नहीं है, जहाँ कोई चलकर पहुँचे। जैसे कहा जाता है कि मृत्यु के बाद व्यक्ति गोलोक जाता है, सो गोलोक कोई स्थान नहीं है। वह तो चेतना का एक स्तर है, जहाँ पर पहुँच कर वाणी चेतना कायम हो जाती है, स्थिर हो जाती है और जिसे भगवान ने परमधाम कहा है, वह है परमज्ञान की अखण्ड चेतना, एकरस चेतना, जहाँ पर जाकर यह सारा द्वैत समाप्त हो जाता है। हम उसी ज्ञान में स्थित रहते हैं। कल्पना करें, जब हम गहरी नींद में होते हैं, उस समय हमारा मन चेतना के किस स्तर पर होता है। आप पाएँगे कि जब आप गाढ़ी नींद में होते हैं, उस समय आपको किसी द्वैत का अनुभव ही नहीं होता। केवल एकरस अद्वैत रहता है। यहाँ तक कि अपने मन की स्थिति का भी बोध नहीं रहता। देह का बोध तो होता ही नहीं, मन के अस्तित्व का बोध भी नहीं रहता। सपने में मन के अस्तित्व का बोध रहता है। मन ही तो वहाँ पर सारे संसार का सृजन करता है। अपने पलंग पर लेटे-लेटे ही सपने में हम कहाँ-कहाँ घूम आते हैं, नदी, पहाड़ देख आते हैं, भाँति-भाँति के कर्म कर आते हैं। जब सुषुप्ति की अवस्था आती है, तब मन भी शान्त, देह की उपाधि भी शान्त हो जाती है। वहाँ पर एक अद्भुत अद्वय-रस का अनुभव तो होता है, पर यह अनुभव अज्ञान की दशा में है। सोकर उठने पर हम फिर से द्वैत के संसार में आ जाते हैं। यही द्वैत का संसार हमें सत्य मालूम पड़ता है।

इसीलिए भगवान कहते हैं कि वह अद्वैत की अवस्था

है, ज्ञान की अवस्था है, उसकी तुलना सुषुप्ति की अवस्था से तो की जा सकती है, पर तुलना केवल इतना ही बताने के लिए है कि जैसे सुषुप्ति की अवस्था में केवल एकत्व का ही बोध होता है, वहाँ द्वैत नाम का कोई तत्त्व रहता ही नहीं है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान की जो स्थिति होती है, परमधाम की जो चैतन्यमयी स्थिति है, वहाँ केवल एकत्व की अनुभूति होती है। नींद में हम अज्ञान में थे, पर यहाँ पर ज्ञान की स्थिति में पूरी तरह से मानो जगे हुए होते हैं। जब हम नींद में होते हैं, तब हमारा मन सोया रहता है, पर समाधि की दशा में या इस ज्ञान की दशा में या परमधाम के अनुभव की अवस्था में हमारा मन पूरी तरह जगा होता है और conscious (चेतन) मन से इस अवस्था का अनुभव करते हैं। भगवान कहते हैं, 'अर्जुन! संसार में जो भिन्न-भिन्न प्रकार का बोध होता है, इसका कारण क्या हैष्ट जानते हो? इस आत्मतत्त्व के रहते हुए भी इसका जो बोध नहीं कर पाते, इसका कारण है उस प्रतिबिम्ब को ही सच्चा मानना है।'

अज्ञानता के कारण सूक्ष्म शरीर का आवागमन

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।७।।

जीवलोके सनातन: जीवभूत: (इस देह में यह सनातन जीवात्मा) मम एव अंश: (मेरा ही अंश है) प्रकृतिस्थानि मन:षष्ठानि (वही इस प्रकृति में स्थित मन सहित) इन्द्रियाणि कर्षति (इन्द्रियों को कर्षित करता है)।

''इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है। वही इस प्रकृति में स्थित मन सहित इन्द्रियों को कर्षित करता है।''

जीव भगवान का शाश्वत प्रतिनिधि है, सनातन है। यह जीव क्या करता है? **मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**। कहते हैं कि वह मन सहित इन्द्रियों को लेकर ही आना-जाना करता रहता है। जिस समय यह जीव शरीर को प्राप्त करता है, कोई नया शरीर प्राप्त करता है और जीव के रूप में दिखाई देनेवाला यह ईश्वर जब शरीर ग्रहण करता है, तब और जब शरीर का उत्क्रमण करके छोड़कर चला जाता है, तब अपने साथ मन और पाँचों इन्द्रियों को ले जाता है। ज्ञानार्थक इन्द्रियाँ हमारी ज्ञानेन्द्रियों के जो सूक्ष्म बीज हैं, वे उस सूक्ष्म देह में बन्द रहते हैं और जीव की मृत्यु के समय वही सूक्ष्म देह उसके शरीर में से निकलकर जाता है। निर्जीव स्थूल देह यहीं पड़ा रहता है और सूक्ष्म-शरीर कारण-शरीर के साथ निकल जाता है। भगवान यहाँ पर कहते हैं कि मृत्यु के समय जिस तरह यह सूक्ष्म-शरीर छहों इन्द्रियों को लेकर स्थूल-शरीर से बाहर निकल जाता है, उसी तरह जन्म के समय भी छहों इन्द्रियों को साथ लेकर नए शरीर में प्रवेश कर जाता है।

जीव ईश्वर का सनातन प्रतिनिधि

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।८।।

इव वायु: आशयात् गन्धान् (जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को) ईश्वर: अपि यत् उत्क्रामति (जीवात्मा भी जिसका त्याग करता है) एतानि गृहीत्वा (इनको ले करके) च यत् शरीरम् अवाप्नोति संयाति (फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है)।

''जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है, इन मनसहित इन्द्रियों को ले करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।''

जैसे कि जो वायु बह रही है, वह यदि गुलाब की क्यारियों से होकर गुजरे, तो गुलाबों की सुगन्ध अपने साथ ले गई और कूड़े के ढेर पर से गई, तो वहाँ की दुर्गन्ध अपने साथ ले गई। सुगन्ध या दुर्गन्ध वायु के साथ-साथ भले ही जाएँ, पर वायु उनसे लिप्त नहीं होती। किसी के प्रति उसका पक्षपात नहीं होता। हवा तो मुक्त रूप से बह रही है। इसी प्रकार सूक्ष्म-शरीर से चाहे सत्कर्म हुए हों और वह स्वर्ग जाने का अधिकारी हो और चाहे उससे दुष्कर्म हुए हों और वह निम्नलोकों में जाने का अधिकारी हो, जीव हर स्थिति में उसे अपने साथ ही ले जाता है। भगवान कहते हैं, जीव तो मेरा सनातन प्रतिनिधि है, फिर भी मुझे देख नहीं पाता। उसका सूरज उन काँच के टुकड़ों में बँटा है। जब प्रतिबिम्ब है, तब बोध होता है कि उसका बिम्ब भी अवश्य है। ऐसा समझकर उस बिम्ब को ही देखने का प्रयत्न करना चाहिए। यह जीव इन्द्रियों के द्वारा बँधा-सा दिखाई देता है। इस जीव को देखकर तुम्हें यह कल्पना करनी चाहिए कि ऐसा ईश्वर शाश्वत पुरुष है, सनातन है। भगवान कहते हैं कि इस जीव को देखो, जो जब शरीर को छोड़ता है, तब शरीर ग्रहण करता है, तब उस सूक्ष्म-शरीर को ले जाता है

साधुओं के पावन प्रसंग (८९)

स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

गोस्वामी तुलसीदास जी अपने एक दोहा में कहते हैं –

बंदऊँ संत असज्जन चरना।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दुख दारुन देहीं। १/४/३

अर्थात मैं सन्त और असन्त दोनों के चरणों में प्रणाम करता हूँ; दोनों ही दुख देनेवाले हैं। परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अन्तर यह है कि एक (सन्त) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असन्त) मिलते हैं, तब दारुण दुख देते हैं (अर्थात् सन्तों का बिछुड़ना मरने के समान दुखदायी होता है और असन्तों का मिलना मृत्यु के समान पीड़ादायक होता है।)

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज (१९०७-१९९६) के प्रति मेरे मन में उसी प्रकार की धारणा बनी हुई है। वे मेरे मित्र, प्रशंसक, दार्शनिक तथा पथप्रदर्शक थे। एक शब्द में कहें, तो वे मेरे परामर्शदाता और मेरे अपने थे। यदि मेरे मन में किसी प्रकार का कोई प्रश्न उठता या मुझे कोई समस्या होती थी, तो वे प्रथम व्यक्ति थे, जिनके साथ मैं विचार-विमर्श करता था। मैं बहुत बार उनके अभाव को अनुभव करता हूँ।

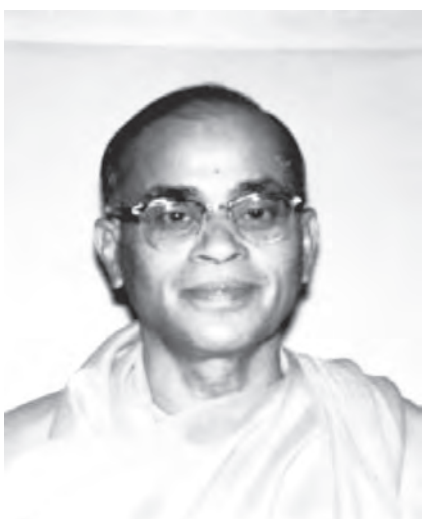

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

स्वामी श्रद्धानन्द की मन्त्र-दीक्षा १९२५ ई. में स्वामी शिवानन्द जी महाराज से हुई थी। वे १९३० ई. में रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुए। १९३९ ई. में स्वामी विरजानन्द जी महाराज ने उनको संन्यास दीक्षा दी। श्रद्धानन्दजी ने १९३९ से १९५१ ई. तक स्वामी विरजानन्द जी महाराज के सचिव के रूप में कार्य किया। १९५२ से १९५६ तक वे उद्बोधन पत्रिका के सम्पादक थे। १९५७ ई. में श्रद्धानन्दजी को अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को केन्द्र में स्वामी अशोकानन्द जी महाराज के सहायक के रूप में भेजा गया। तथा बाद में श्रद्धानन्दजी महाराज सैक्रामैन्टो केन्द्र के अध्यक्ष हुए। १९ जुलाई, १९९६ ई. में सैक्रामैन्टो में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस नश्वर शरीर का त्याग किया।

मैंने १९५२ में उद्बोधन में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का प्रथम बार दर्शन किया। मैं वहाँ प्रत्येक रविवार को जाया करता था। वहाँ पर मैं संन्यासियों के निर्देशानुसार सेवा करता था। महाराज उद्बोधन के तीन मंजिला के दाहिनी ओर रहते थे। एक बार जब मैंने उनको प्रणाम किया, तो उन्होंने कहा, 'तैत्तिरीय उपनिषद् के इस श्लोक को कण्ठस्थ करने के बाद यहाँ से जाना, ''**रसो वै सः। रसँ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवती। को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ही ह्येवानन्दयति।** अर्थात् वही रस है, क्योंकि यह (जीवात्मा) इस रस को प्राप्त करके ही आनन्दयुक्त होता है। यदि यह आकाश की भाँति व्यापक, आनन्दस्वरूप न होता, तो कौन जीवित रह सकता और कौन प्राणों की क्रिया कर सकता; निःसन्देह यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है।'' वे स्वयं कर्ता; वे ही रस-स्वरूप हैं। यह जीव इस रस को प्राप्त करके आनन्दित होता है। हृदय गुहा में यदि यह आनन्द नहीं रहता, तो कौन प्राण और अपान क्रिया करता?

१९५३ और १९५४ वर्ष के दौरान श्रीमाँ सारदा देवी के शताब्दी समारोह के समय उद्बोधन में मैं स्वयंसेवक था। श्रद्धानन्द जी महाराज ने उद्बोधन के शताब्दी विशेषांक के लिए बहुत परिश्रम किया था। श्रीमाँ की स्मृतियों को उनके बहुत से शिष्यों और शिष्याओं से संग्रह किया तथा बहुत से महिला भक्तों ने मौखिक रूप से अपनी स्मृतियों को बताया था, जिसे महाराज ने लिखकर संशोधित किया था। परवर्ती काल में मैंने उनमें से उनचास स्मृतियों का संग्रह करके बंगला में मातृदर्शन नामक पुस्तक प्रकाशित किया। उसकी एक प्रति मैंने उनको उपहार के रूप में दी थी। बाद में, उन्होंने लिखा था, ''यह पुस्तक मेरी शय्या-सहभागिनी है। मैं प्रत्येक रात्रि एक स्मृतिकथा को पढ़कर शयन करता हूँ।''

स्वामी श्रद्धानन्द जी के अमेरिका जाने के बाद उनके और मेरे बीच बहुत-से पत्रों का आदान-प्रदान हुआ है। ११ जून, १९७१ को मैं लॉस एंजेलिस पहुँचा। श्रद्धानन्दजी सैक्रामेंटो से हवाई जहाज से आये तथा एयरपोर्ट पर आकर मेरा स्वागत किया। स्वामी असक्तानन्द तथा अन्य अमेरिकी भक्त भी एयरपोर्ट पर आये थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने स्वाभाविक विनोदपूर्ण शब्दों में कहा, ''क्या तुम जानते हो कि तुम अब कहाँ हो? तुम Holy Woooood में हो, वृन्दावन के पवित्र वन में – गोपियों से भरा हुआ!'' उसके बाद हमलोग हॉलिवूड केन्द्र पहुँचे तथा स्वामी प्रभवानन्द जी के साथ भोजन-प्रसाद ग्रहण किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी उसके अगले ही दिन सैक्रामेंटो वापस चले गये। उसके बाद वे कई महीनों की छुट्टी के लिए भारत आये।

जनवरी, १९७२ ई. में मैं ओलेमा, कैलिफोर्निया के ओमेन्स रिट्रिट हॉउस के उद्घाटन समारोह में गया। वहाँ पर हमलोग अनेक संन्यासिगण समवेत हुए थे। ५ जनवरी को स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ सैक्रामेंटो गया। तब वहाँ पर कोई अतिथि कक्ष नहीं था। महाराज ने अपना कमरा मेरे रहने के लिए दे दिया तथा उन्होंने अपने अध्ययन कक्ष के सोफा पर शयन किया। मैंने उनके इस व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया, किन्तु वे मेरी बात को किसी भी प्रकार से नहीं माने। एक वरिष्ठ और प्रसिद्ध संन्यासी के इस प्रकार के आचरण से मैं बहुत गद्गद हो गया।

मैंने देखा कि श्रद्धानन्दजी किसी भी वस्तु को एक नई दृष्टिकोण से देखते थे। सैक्रामेंटो आश्रम के बगल में एक मनोरंजन क्लब था। आश्रम और क्लब के बीच में चारदिवारी

सैक्रामेंटो आश्रम

के स्थान पर साइप्रस के वृक्ष थे। क्लब में खेलकूद के कारण बहुत शोर-शराबा होता था। श्रद्धानन्दजी ने कहा, ''देखो, ये वृक्ष वैदिक ऋषि जैसे हैं। ये लोग ध्वनि प्रदुषण से हमारे आश्रम की रक्षा कर रहे हैं।''

स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज के कहने से वेदान्ते आलोके कृष्टे शैलोपदेश (**Sermon on the Mount According to Vedanta**) का अनुवाद किया। मैंने स्वामी श्रद्धानन्द जी से इसका सम्पादन करने तथा इसकी भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया। हमलोगों के बीच में विचारों का रोचक आदान-प्रदान हुआ करता था। उदाहरण के लिए, जैसा कि मैंने अनुवाद किया, **Resist no evil** 'अशुभ को बाधा मत दो' किया। उन्होंने काटकर लिखा, 'अत्याचार को बाधा मत दो'। उन्होंने इसके उत्तर में इस पदबन्ध की व्याख्या करते हुए अपना अभिमत दिया, 'ईसा मसीह को जब शैतान ने प्रलोभन दिखाया, तब क्या उन्होंने प्रतिरोध नहीं किया? यदि कोई तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन को नष्ट करने का प्रयास करे, तो क्या तुम उसका प्रतिरोध नहीं करोगे? यहाँ पर ईसा मसीह अपने शिष्यों को यह बताना चाह रहे हैं कि जब तुमलोग ईश्वर के नाम का प्रचार करोगे, तो विरोध और अत्याचार होगा। तुम उसका प्रतिरोध मत करना। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेंगे।'

स्वामी श्रद्धानन्द जी से कोई बहुत कुछ सीख सकता था। वे उद्बोधन पत्रिका के योग्य सम्पादक थे। वे निर्दयी समालोचक थे। एकबार मैंने श्रीरामकृष्ण के द्वितीय बार अवतार-ग्रहण के विषय पर लेख लिखा तथा उस पर उनका अभिमत माँगा। उन्होंने इसको प्रकाशित करने से मना किया तथा कहा, ''एक श्रीरामकृष्ण आये थे। अभी तुम एक और

रामकृष्ण को लाना चाहते हो तथा भक्तों को भ्रमित करना चाहते हो?'' मैंने कहा, ''श्रीरामकृष्ण ने स्वयं कहा है कि वे पुन: आयेंगे। ठाकुर कहाँ, कब और किस भाव में आयेंगे, मैंने तो केवल उन सबका संकलन और सम्पादन किया है।'' जो भी हो, १९९६ ई. में मैंने उस लेख को स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज को पढ़कर सुनाया। उन्होंने उसको उद्बोधन में प्रकाशित करने की अनुमति दी। यह लेख बाद में उद्बोधन पत्रिका में तथा 'श्रीरामकृष्ण सान्निध्ये' पुस्तक में जोड़ दिया गया है। अंग्रेजी में **'The Second Coming of Ramakrishna'** तथा **'How to Live with God'** पुस्तक में समाविष्ट हुआ।

१९७६ वर्ष में श्रद्धानन्दजी स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज को देखने आये, जो बीमार थे। मैं एक रात्रि को ११ बजे श्रद्धानन्द जी महाराज के कमरे में गया तथा देखा कि महाराज दैनन्दिनी लिख रहे हैं।

मैंने पूछा – ''दैनन्दिनी क्यों लिखनी चाहिए?''

स्वामी श्रद्धानन्द – दैनन्दिनी मुझे स्मरण कराती है कि यह संसार मिथ्या है।

मैं – कैसे?

स्वामी श्रद्धानन्द – ''देखो, सात दिन पूर्व एक घटना घटित हुई थी। उसने मुझे बहुत अशान्त कर दिया था, किन्तु अब वह घटना तुच्छ मालूम होती है। मैं आश्चर्यचकित हो रहा हूँ कि ऐसी तुच्छ घटना ने मुझे बहुत दुख पहुँचाया। यह दृश्यमान संसार अनित्य है, किन्तु फिर भी हमलोगों के लिए सत्य प्रतीत हो रहा है, यही आश्चर्य है।

सेन्ट लुईस से स्थानान्तरण होने के पश्चात् प्रत्येक ग्रीष्म काल में मैं सेक्रामेंटो केन्द्र जाया करता था तथा वहाँ पर महाराज के सान्निध्य में कई दिन व्यतीत करता था। एक दिन बहुत गर्मी थी। हम दोनों कृष्ण तालाब के निकट स्थित सन्त उद्यान के बीच में बैठे हुए थे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा, ''देखो, मैं बृहदारण्यक उपनिषद् से मधु ब्राह्मण का पाठ करूँगा, जिससे सैन फ्रैंसिस्को से शीतल हवा आयेगी।'' इस अन्धविश्वास पर मैंने बहुत कठिनता से अपनी हँसी को रोकने का प्रयास किया। उन्होंने पाठ करना आरम्भ किया, ''**इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं शारीरस्तोजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्।।** (अध्याय २, पञ्चम ब्राह्मण १) अर्थात् यह पृथिवी समस्त भूतों का मधु है और सब भूत इस पृथिवी के मधु हैं। इस पृथिवी में जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है और जो यह अध्यात्मशरीर तेजोमय अमृतमय पुरुष हैं, यही वह है जो कि 'यह आत्मा है' (इस वाक्य से बतलाया गया है)। यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है।''

तत्पश्चात् उन्होंने कहा, ''जल सर्वभूत का मधु है; अग्नि सर्वभूत का मधु है, वायु सर्वभूत का मधु है।''

तदनन्तर उन्होंने कहा, ''देखो, उस ऊँचे वृक्ष की पत्तियाँ हिल रही हैं। ये मन्त्र की शक्तियाँ हैं। एक सौ मील दूर से हवा आ रही है।'' मैं शान्त होकर सुनता रहा।

एक अन्य दिन बगीचा में टहलते समय श्रद्धानन्दजी ने कहा, ''आज प्रात:काल एक अमेरिकी महिला के साथ भेंट थी। उसने कहा, ''स्वामी, कोई भी मुझे प्रेम नहीं करता।'' ''महिला की बात सुनकर मुझे खराब लगा। दिल से उसके लिए मुझे दुख हुआ।'' तत्पश्चात् एक बेंच की कुर्सी पर बैठकर श्रद्धानन्द महाराज कहने लगे, ''देखो, मैं सर्वत्र प्रेम देखता हूँ। इस पीच वृक्ष को देखो। यह वृक्ष ठण्ड तथा गर्मी, धूप तथा वर्षा को सहन करता हुआ खड़ा है। जब फल का समय आता है, तब वह वृक्ष मुझे सुस्वादु पका हुआ फल देता है। यह वृक्ष मुझे प्रेम करता है। यह अपना फल स्वयं नहीं खाता, अपितु दूसरे सभी को दे देता है। इस बगीचा में डुमुर, सेब, अंगूर होते हैं, ये सभी फल, वृक्ष हमें प्रेम करते हैं।''

कृष्ण तालाब, सेक्रामेंटो आश्रम

तदनन्तर महाराज अपने कवित्व भाव में कहने लगे, 'जब मैं सुबह स्नानागार में जाता हूँ, तब टूथब्रश और टूथपेस्ट कहते हैं कि हम तुमसे प्रेम करते हैं, अब अपने दाँतों की सफाई करो।' नल का जल कहता है, 'मैं तुमको प्रेम करता हूँ, अपना मुँह धो लो।' वस्त्र कहते हैं, 'हम तुमको प्रेम करते हैं।' ध्यान का आसन कहता है, 'मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, मेरे ऊपर बैठकर तुम ध्यान करो।' तदुपरान्त मैं नाश्ता करने जाता हूँ, कुर्सी कहती है, 'मैं सारी रात तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी हुई हूँ, मेरे ऊपर बैठकर नाश्ता करो।' फल, अनाज, टोस्ट, कॉफी इत्यादि कहते हैं, 'हमलोग तुमसे प्यार करते हैं, हमसे शक्ति प्राप्त करके तुम कार्य करो।' यदि इस दृष्टि से सभी वस्तुओं को देखोगे, तब प्रेम सर्वत्र है।''

प्रत्येक वस्तु को इस दृष्टि से देखना मुझे बहुत रोमांचकारी लगा। सांख्य दर्शन में इससे मिलता-जुलता एक सूत्र है संहत् परार्थत्वात् अर्थात् इस विश्व की प्रत्येक वस्तु दूसरे लोगों के लिए है। वायु, जल, घर, वाहन, फर्नीचर, बर्तन, सूर्यकिरण, चन्द्रमारश्मि, प्राकृतिक दृश्य इत्यादि सब कुछ दूसरों को सुख देने के लिए ही हैं। हम दूसरों के सौन्दर्य को देखकर आनन्दित होते हैं। सभी जीवित प्राणी, मनुष्य, यहाँ तक कि ईश्वर भी दूसरों से प्रेम पाना पसन्द करते हैं। यद्यपि ईश्वर को किसी बात का अभाव नहीं है, तथापि वे भक्तों से प्रेम पाने की आकांक्षा करते हैं। परवर्ती काल में, मैंने इन वाक्यों को लेकर एक व्याख्यान तैयार किया, जिसका नाम दिया था, 'Love is Everywhere'.

हमारा प्रेम ईश्वर और संसार के बीच कैसे बँट गया। इसको बताने के लिए एक दिन श्रद्धानन्दजी महाराज ने एक छोटी-सी कविता कही : ''कमल सूर्य को प्रेम करता है; वह अपनी पंखुड़ियाँ सूर्योदय के समय विस्तारित करता है और सूर्यास्त के समय बन्द कर लेता है। अपना मुस्कराता हुआ चेहरा वह सूर्य को दिखाता है, किन्तु अपना पराग केवल मधुमक्खी को ही देता है।''

एक दिन मैंने महाराज से पूछा, ''महाराज, आपको भारत जाने की इच्छा नहीं होती?'' उन्होंने उत्तर देते हुए कहा, ''देखो, मैं अभी जयपुर के गोविन्द देवजी मन्दिर के पुजारी जैसा हो गया हूँ। पुजारी पूर्व में राजा द्वारा बुलाने पर भी राज दरबार में नहीं जाते थे। किन्तु जब उनका विवाह हो गया तथा बाल-बच्चे हो गये, तब वे राजा को प्रसन्न करने के लिए मन्दिर से निर्माल्य, प्रसाद इत्यादि लेकर राजा के पास दौड़कर जाने लगे, क्योंकि उनको रुपये-पैसे की आवश्यकता होती थी। अब मेरे बहुत से बाल-बच्चे (अर्थात् अनेक शिष्य-शिष्याएँ) हैं। श्रीरामकृष्ण के पास इन सब के कल्याण के लिए प्रार्थना करनी होती है। अब इन लोगों के सुख-दुख के साथ इस देश (अमेरिका) में ही रहने का मैंने चुनाव किया है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज और मेरे बीच में पुस्तक क्रय करने को लेकर प्रतियोगिता होती थी। हमलोग एक-दूसरे के आश्रम में जाने पर एक-दूसरे की पुस्तकों की आलमारी देखा करते थे। अब्राहम लिंकन के प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। मेरे पास भी लिंकन की कुछ पुस्तकें थीं। एक समय श्रद्धानन्दजी मेरी आलमारी में Stories of Lincoln पुस्तक को देख रहे थे। उनके पास वह पुस्तक नहीं थी। जब मैंने उनको उपहार के रूप में वह पुस्तक दी, तब उन्होंने एक छोटे बच्चे जैसे आनन्दित होते हुए उस पुस्तक को स्वीकार कर लिया।

एक दिन मैंने उनसे पूछा, ''सभी 'अपने हृदय में ध्यान' करने के लिए कहते हैं। इस हृदय का रहस्य क्या है?'' उस समय मैं छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित दहर विद्या (अपने अन्दर ब्रह्मविद्या) का निदिध्यासन कर रहा था।

श्रद्धानन्द महाराज ने कहा, ''देखो, मन को केन्द्रित करने के लिए एक निर्देश मात्र है। ब्रह्म तो सर्वव्यापी हैं। वे तो केवल हृदय में सीमाबद्ध नहीं हैं। जिन साधकों ने अभी-अभी ही ध्यान करना आरम्भ किया है, वे लोग हृदय को केवल रक्त-मांस का ही समझते हैं। इसीलिए उनलोगों को हृदय में ज्योतिर्मय स्वरूप का ध्यान करने के लिए कहा जाता है। द्वितीय स्तर में आरोहण करने पर साधक यह समझने लगता है कि हृदय रक्त-मांस का नहीं बना है, बल्कि अन्तःकरण बुद्धि का स्वच्छ अंश है। साधक उस बुद्धि में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को देख पाता है। इसी को हृदय-गुहा कहते हैं। प्रथम भौतिक तत्पश्चात् आध्यात्मिक हृदय होता है। तृतीय अवस्था में, साधक शरीर और मन को पार करके सर्वव्यापी चैतन्य का अनुभव करता है। उस अवस्था में, हृदय में इष्ट मूर्ति, बुद्धि में प्रतिबिम्बित चैतन्य अखण्ड चैतन्य के साथ एक हो जाती है। इसका अनुभव आध्यात्मिक हृदय में होता है। **(क्रमशः)**

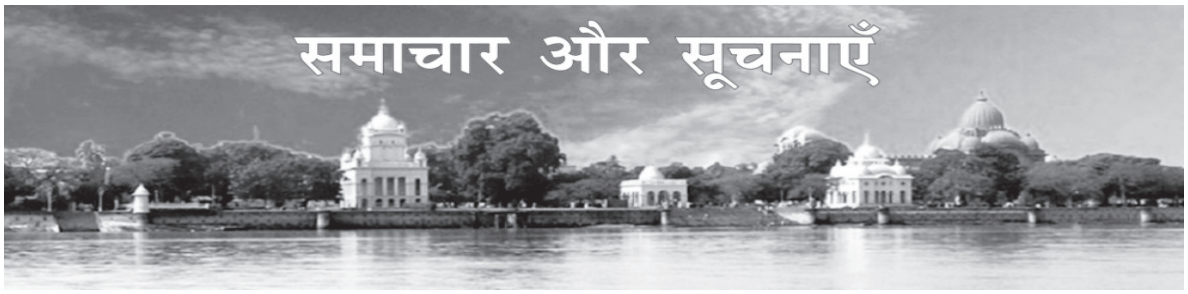

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर

स्वामी विवेकानन्द जी की १६४वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा २०२६ में विभिन्न कार्यक्रम आयोजित हुये –

विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं –

१४ जनवरी, २०२६ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – '**विश्व शान्ति के दूत स्वामी विवेकानन्द।**' इसमें शासकीय नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु.याशिका बरिहा ने प्रथम, विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, विद्यापीठ, कोटा रायपुर के छात्र दिव्याश चन्द्रा ने द्वितीय, सेन्ट विन्सेन्ट पैलोटी महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कुमारी हीना परवीन ने तृतीय और कुमारी श्रद्धा निषाद, विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, कोटा और कुमारी कलिका पारधी, शा.ना. विज्ञान महाविद्यालय ने प्रोत्साहन पुरस्कर प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के इतिहास विभागाध्यक्ष डॉ. रवीन्द्र ब्रह्मे जी ने की।

१५ जनवरी, २०२६ को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसमें शास. नागार्जुन विज्ञान महा. रायपुर की कु. श्रीप्रिया तिवारी और प्रगति कालेज, रायपुर की छात्रा कुमारी हिमानी सिन्हा ने प्रथम, शा. नागार्जुन विज्ञान महा. की छात्रा कु. डाली ने द्वितीय, विवेकानन्द शि. सं., विद्यापीठ, कोटा रायपुर के छात्र वैभव गौतम ने तृतीय और दिशा कालेज, रायपुर के एल. वमशी और विवेकानन्द शि. संस्थान रायपुर के छात्र दिव्यांश चन्द्रा ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता पं.रवि.शु. वि. के क्षेत्रीय अध्ययन एवं अनुसन्धानशाला विभागाध्यक्ष डॉ. एल. एस. गजपाल जी ने की।

१६ जनवरी, को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – '**इस सदन की राय में सामाजिक समरसता के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता सम्भव है।' (जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में)** इसमें शास. नागार्जुन वि. महा. की छात्रा कु. कलिका पारधी ने प्रथम, वहीं की छात्रा कु. डाली ने द्वितीय, वहीं की छात्रा कु. श्रीप्रिया तिवारी और विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, कोटा के वैभव गौतम ने तृतीय और दिशा कालेज के एल. वामशी और सेन्ट वि. पैलोटी महाविद्यालय की कुमारी हीना परवीन ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता रवि. शु. वि. के शारीरिक शिक्षा विभागाध्यक्ष डॉ. राजीव चौधरी जी ने की।

१७ जनवरी को आयोजित अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – '**इस सदन की राय में भारतीय नारी का आदर्श सीता, सावित्री तथा दमयन्ती हो अथवा पाश्चात्य अनुप्राणित हो।**' इसमें पुलिस पब्लिक स्कूल, पेन्शन बाड़ा, रायपुर की छात्रा कु. उन्नति शर्मा ने प्रथम, विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासी उ.मा. विद्यालय,

कोटा, रायपुर के छात्र ओंकार कोसले ने द्वितीय, पुलिस

पब्लिक स्कूल की छात्रा कुमारी सुकृति शर्मा ने तृतीय और विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र विश्वजीत भार्गव और महर्षि विद्यामन्दिर की छात्रा कुमारी ईशा विश्वास ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता श्री ए. के. सिंह, अपर सचिव वित्त विभाग, रायपुर ने की।

१८ जनवरी, को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के ओंकार कोसले ने प्रथम, पुलिस पब्लिक स्कूल की छात्रा कु. उन्नति शर्मा ने द्वितीय, वहीं की सुकृति शर्मा ने तृतीय और विवेकानन्द विद्यापीठ के आर्यन खन्ना और मदर्सप्राइड, सुन्दर नगर के राहुल साहू ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता आयुष विश्वविद्यालय के डॉ. सुपर्ण सेन गुप्ता जी ने की।

१९ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था – '**स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्दिष्ट आत्मविकास के सूत्र।**' पु. प.स्कूल की कुमारी सुकृति शर्मा और उन्नति शर्मा ने प्रथम, विवेकानन्द विद्यापीठ के आर्यन खन्ना ने द्वितीय और वहीं के ओंकार कोसले ने तृतीय और विवेकानन्द विद्यापीठ के सुरेन्द्र पाल और श्रीनारायाणा किड्स एकेडमी, रायपुर के हर्षित वर्मा ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता नवीन शास. महाविद्यालय, नवागढ़, बेमेतरा के प्राचार्य डॉ. गिरीश कान्त पाण्डेय जी ने की।

२० जनवरी को आयोजित 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – '**आदर्श विद्यार्थी स्वामी विवेकानन्द।**' इसमें श्रीनारायाणा किड्स एकेडमी, रायपुर की छात्रा कु वैदेही गुप्ता ने प्रथम, मदर्स प्राइड उ. वि. प्रोफेसर कालोनी के छात्र लव्यांश भार्गव ने द्वितीय, श्रीरामकृष्ण उ. विद्यालय, मंगल बाजार, रायपुर की छात्रा कु. भव्या सोना ने तृतीय और श्रीनारायाणा किड्स एकेडमी की छात्रा कु. दामिनी पटेल, दिल्ली पब्लिक स्कूल, नवा रायपुर के छात्र आदित्य पाण्डेय, स्वामी विवेकानन्द सिनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की छात्रा कु. गरिमा चौधरी ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता नवीन शासकीय महाविद्यालय, खरोरा की प्राचार्या डॉ. शम्पा चौबे ने की।

२१ जनवरी 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' थी। विषय था – '**इस सदन की राय में शिक्षा का उद्देश्य धनप्राप्ति अथवा चरित्र गठन हो।**' इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ के सत्यम भारद्वाज ने प्रथम, मदर्स प्राइड हायर सेकेन्ड्री स्कूल, खम्हरिया की छात्रा कुमारी मिहिका यादव ने द्वितीय, वहीं की छात्रा कु. सिमरन शर्मा तथा विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र पूरब दिवान ने तृतीय और महर्षि विद्यामन्दिर, रायपुर के छात्र रुद्र चन्द्राकर, नारायणा किड्स एकेडमी की छात्रा आराध्या ठाकुर, महाकाली बाड़ी विद्यामन्दिर, पण्डरी, रायपुर के अरहम रंगरेज, मदर्स प्राइड हा.से.स्कूल, प्रोफेसर कालोनी, रायपुर के छात्र अनिमेष तिवारी ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पूर्व प्राध्यापिका डॉ. मीता झा ने की।

२२ जनवरी को 'अन्तर्प्राथमिक पाठशाला पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें स्वामी विवेकानन्द सीनियर सेकेन्डरी स्कूल, चौबे कॉलोनी रायपुर के हिमाक्ष वर्मा ने प्रथम, विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र मोहित प्रधान ने द्वितीय,

वहीं के छात्र आर्यन् खरे ने तृतीय, श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. गौरी तिवारी, कु. जीनत परवीन, मदर्सप्राइड हा.से.स्कूल, सुन्दर नगर की छात्रा कु. पार्वती सोनी, श्रीरामकृष्ण विद्यालय की छात्रा कु. कुमकुम सोनकर ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता नवीन शासकीय महाविद्यालय, अमलीडीह में अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका डॉ. प्रीतालाल जी ने की।

सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

श्रीमद्भागवत प्रवचन आयोजित हुआ

२६ जनवरी २०२६ से १ फरवरी २०२६ तक प्रतिदिन

सन्ध्या ७ से ९ बजे तक वृन्दावन से पधारे प्रसिद्ध भागवत उपासक पण्डित श्री अखिलेश शास्त्रीजी के 'श्रीमद्भागवत में रासलीला का रहस्य' पर भक्तिपूर्ण मार्मिक और सारगर्भित प्रवचन हुए।

पुरस्कार-वितरण समारोह

२५ जनवरी, २०२६ को सन्ध्या ६.३० बजे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन हुआ। कार्यक्रम का शुभारम्भ अतिथियों के दीप प्रज्वलन और स्वामी पारगानन्द और स्वामी धर्मपालानन्द के द्वारा शान्ति-मन्त्र-पाठ से हुआ। आश्रम के छात्रों ने देशभक्ति गीत प्रस्तुत किये। विभिन्न वर्ग के भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त छात्र-छात्राओं ने व्याख्यान दिये। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि थीं रायपुर नगर निगम की महापौर श्रीमती मीनल चौबे जी। उन्होंने

छात्र-छात्राओं को सम्बोधित करते हुये कहा – मैं आज जो कुछ भी हूँ, इसी आश्रम की देन है। मैं कक्षा छठवीं से कॉलेज स्तर की आश्रम द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होती थी। यहीं से मंच पर बोलने का अभ्यास हुआ और कालेज में छात्रसंघ अध्यक्ष बनी। विवाह होने के बाद मैं अपने बच्चों को भी लेकर आश्रम में प्रतियोगिताओं में भाग दिलाने आती थी। आश्रम और स्वामी विवेकानन्द ही हमारे प्रेरणास्रोत हैं। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने 'विवेकानन्द के सपनों का भारत' पर सारगर्भित और प्रेरक व्याख्यान दिये। उन्होंने कहा कि विवेकानन्द भारतमय हो गये थे। भारत के दीन-दुखियों की पीड़ा उनके लिये असह्य थी। कार्यक्रम के अध्यक्ष रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द जी ने श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के दिव्य जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। अतिथियों के कर-कमलों द्वारा विभिन्न प्रतियोगिताओं में विजेता ५४ छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किया गया। यह प्रतियोगिता १४ जनवरी, २०२६ से २२ जनवरी तक चली थी, जिसमें २१ शिक्षण संस्थानों के १४३ प्रतिभागी सम्मिलित हुये और ५४ विजेता रहे। कार्यक्रम में छात्र-छात्राओं, शिक्षकों और प्रबुद्ध नागरिकों सहित कुल २१५ लोगों ने सोत्साह भाग लिया। प्रतियोगिता के सभी सत्रों का संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया। सभा का कुशल संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने और धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।